सब
स्वार्थी हैं

उपन्यास

सब स्वार्थी हैं

आरिगपूडि

आखिर यह बात भी स्त्री को लेकर ही टूटनी थी ? क्यों हमारे समाज में सारी बातें विवाह या उसके निश्चय के साथ जुड़ी हुई हैं ? क्या मानवीय सम्बन्धों में यह सम्बन्ध सबसे मुख्य है ? पर क्या इस कारण और बातों को कोई महत्ता दी ही नहीं जानी चाहिए ?

श्री निरंजन के बारे में भी स्त्री को लेकर ही बहुत कुछ माथापच्ची हुई। इसकी उन्होंने न आशा की थी, न कभी कल्पना ही। इसीलिए उनको आश्चर्य हुआ। क्या इतना पढ़-लिखकर वे इस योग्य भी न बन पाये थे कि अपना जीवन-साथी स्वयं खोज सकें और अपनी शादी खुद करें ? पश्चिम में यह जब हो सकता है तो भारत में क्यों नहीं हो सकता ? मा-बाप पर वैसे ही यहां कितने ही बोझ हैं, क्यों वे अपने ऊपर एक और बोझ लादते हैं ? क्यों वे अपने परिवार की सुरक्षा के विषय में इतने चिन्तित हैं ? क्यों नहीं हर व्यक्ति को स्वतन्त्रता दी जाती है ? परिवार टूटेगा ? क्यों टूटेगा ? इनकी आवश्यकता ही क्या है ?

—ये कुछ ऐसे प्रश्न थे जिनका सैद्धान्तिक या वैचारिक पक्ष तो श्री निरंजन के मन में हमेशा रहा था, पर वे स्वयं प्रचलित धारणाओं और परंपराओं के शिकार होंगे और उन्हें अपना जीवन-मार्ग चुनने की स्वतंत्रता न मिलेगी, यह उन्होंने कभी न सोचा था। यह सोचकर तो उनको बार-बार ग्लानि भी होती कि क्यों उनको लेकर इतना भाव-ताव हुआ था। क्या मैं कोई बिक्री की चीज हूं कि हाट में रख दिया और जिसकी बोली सबसे ऊपर रही, उसको सौंप दिया गया ? उनको नहीं मालूम था

कि समाज के दुर्विश्वासों के प्रति अपना विद्रोह उनको अपने घर से ही शुरू करना होगा ?

निरंजन जब भारत छोड़कर, उच्च शिक्षा के लिए विदेश गए थे तो ले-देकर उनकी उम्र इक्कीस-बाईस की थी। देखने में तो बिल्कुल किशोर ही लगते थे। बहुत तेज। शिक्षण काल में वे अपनी श्रेणी में अव्वल रहे। अंग्रेजी में तो उनको स्वर्ण पदक भी मिला था।

बड़ों की सलाह पर उनको अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन के लिए इंग्लैंड भेजा गया था। वहां उच्च शिक्षा पूर्ण करके घर वापस आए ही थे, कि मां-बाप ने विवाह के प्रस्ताव सामने इस तरह रखे, जैसे उस क्षण की बहुत दिनों से बड़ी उत्सुकता के साथ वे प्रतीक्षा कर रहे हों।

"बीस एकड़ जमीन, कार, पचास हजार नकद, और भी कितनी सुविधाएं। अच्छा खानदान…"

निरंजन मुस्करा दिये।

"और यह एम० ए० पास है, कालेज में लेक्चरर है। जमीन-जायदाद नहीं है। परिवार धनी नहीं है।…" निरंजन के पिता ने इस प्रकार कहा जैसे उन पर यह प्रस्ताव लादा गया हो, और वे स्वयं इसके पक्ष में न हों।

निरंजन फिर मुस्करा दिये और चेहरा एक तरफ फेर लिया, मानो अपने ही ऊपर हंस रहे हों।

"पढ़ी-लिखी तो खास नहीं है, मां-बाप की इकलौती है। ढेर-सा रुपया है। माल-मिल्कियत है। पिता बड़ी हैसियतवाले हैं, और…" श्री निरंजन के पिता शायद और भी कहते यदि वे अपने लड़के को इधर-उधर इस तरह देखते न पाते, जैसे वे सुन ही न रहे हों।

"और भी कितने प्रस्ताव हैं…अच्छा है कि तुम खुद ही तय कर लो। हम चाहते हैं कि तुम घरवाले बनो। तुम्हारी मां भी चाहती है कि जल्दी घर बहू आये।…"

निरंजन की मुस्कराहट कभी खिलती तो कभी भिच-सी जाती। उनके सामने स्वतः एक ऐसा दृश्य खिलता जा रहा था जिसकी कल्पना हर शिक्षित भारतीय अपने यौवन में कभी न कभी करता है। उन्होंने भी

करता की थी। और यह निखरती वास्तविकता हू-बहू की कल्पना की तरह थी।

"खैर, तुम शादी करना भी चाहते हो कि नहीं ?" निरंजन के पिता ने उनको गम्भीर मौन देखकर बड़े संजीदा ढंग से पूछा।

"अभी जल्दी ही क्या है ?" निरंजन ने कुछ हिचकिचाते हुए कहा।

"एक-दो महीने में उनतीस-तीस के होने जा रहे हो। इस उम्र में तो हमारे यहां आदमी दो-तीन बच्चों का पिता भी हो जाता है।"

निरंजन ने अट्टहास करना चाहा, किन्तु मुस्कराते-मुस्कराते उन्होंने अपने हाल को काबू में रखा। "अभी तो जमा भी नहीं हूं, आमदनी का रास्ता देखना है, और···" निरंजन कुछ इस तरह की भाषा और संकेतों में बातचीत कर रहे थे, जो उनके पिता भली भांति समझ लें, यद्यपि उनके अपने विचार कुछ और थे।

"लग गई न नौकरी। यूनिवर्सिटी में। अच्छी-खासी तनख्वाह है और क्या चाहिये ?···"

"हां, हा, नौकरी तो है, पर जमने-जमाने में वक्त लगेगा···"

"जमने-जमाने के लिए ही तो शादियां जुटाई जाती हैं ?" उनके पिता ने कहा।

निरंजन के पास इसका कोई उत्तर न था। वे मुस्कराते-मुस्कराते घर से बाहर सड़क पर टहलने निकल गये।

निरंजन का खाना-पीना घर था। परिवार प्रतिष्ठित था, क्योंकि उनके दादा ने कभी अपनी सारी सम्पत्ति देश को सौंप दी थी। उनके पिता स्वयं लम्बे काल तक देश कल्याण के कार्यों में सलग्न रहे थे, इससे उनको आर्थिक स्थिरता तो न मिली थी किन्तु सम्मान अवश्य मिला था। उनके पास विशेष संपत्ति-साधन नहीं थे, जो भी कुछ था श्री निरंजन के पिता ने स्वयं कमाया था। एक-एक पैसा जोड़कर, बड़े कष्ट से, धीमे-धीमे। अब भी ले-देकर वे पांच एकड़ के मालिक ही बन पाये थे, और उन पर भी कर्ज था। जब जिन्दगी शुरू की थी तो पैसे के लिए उन्होंने क्या कष्ट नहीं झेले थे। दूसरों की उदारता के लिए हाथ भी पसारे थे। अगर अपमानित न होते तो जिन्दगी लुढ़कती जाती, और वे इस योग्य भी न बन पाते।

अपना परिश्रम, कुछ विरादरी की कृपा, कि निरंजन पढ़-लिख गए थे, वरावर वजीफे भी मिलते आये थे। पिता का निरन्तर प्रोत्साहन न मिलता, तो शायद निरंजन का जीवन किसी और भिन्न पटरी पर चलता होता।

उनका छोटा सा गांव था, एक ऐसी जगह, जहां वड़े लोगों को आना-जाना भी कम होता था। छोटे गांव के छोटे स्कूल में रहते ही, कैसे निरंजन, इतने तेज और अक्लमन्द निकले, यह देखकर कहना होगा कि निरंजन में असाधारण वौद्धिक प्रखरता थी, जो विपरीत वातावरण में भी विकसित हुई। कस्वे में स्कूल की पढ़ाई पूरी की, और शहर में कालेज की। इसके पीछे कितनी मेहनत, कितनी लगन और कितने खर्च थे, यह सव जानते थे।

निरंजन मां-वाप के इकलौते न थे। दो भाई थे और दो वहिनें, और सभी उनसे छोटे। आज श्री निरंजन के परिवार को खाने-पीने की तंगी न होती हो, और ग्रामीण मानदण्डों के अनुसार, कुछ-कुछ सम्पन्न भी माने जाते हों, पर उनको वह समय न भूला था जव उनको मांड़ पीकर, पेट भरना पड़ता था, या सम्पन्न ग्रामीणों के यहां वारी-वारी से खाना खाना पड़ता था, ताकि एक समय में किसी एक परिवार पर वे भार न वनें। तीक्ष्ण स्मरणशक्ति वाले थे, इसलिए संघर्ष के वे कटु अनुभव उनको अच्छी तरह याद थे, और वे कभी-कभी उनकी जुगाली भी कर लेते थे। नहीं मालूम कि वे भाग्यवादी थे कि नहीं, पर जिन परिस्थितियों से वे आये थे अगर वे हो भी जाते, तो कोई आश्चर्य की वात न थी।

उनका अपना घर भी था। खपरैल का ही सही, वड़ा आंगन था। कभी वचपन एक झोंपड़े में काटा था, लालटेन की रोशनी में पढ़ा था। वुआई और फसल के मौसम में पिता की खेतों में मदद भी की थी। और भी कितने ही काम करने होते थे, इस तरह की ग्रामीण पृष्ठभूमि वाला अंग्रेजी में प्रवीण होगा, इस पर अचरज करने वाले कई थे।

अगर कोई वड़े अफसर का लड़का, जिसकी सारी शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम से अंग्रेजी स्कूलों में हुई हो, जिसका पालन-पोषण अंग्रेजी वातावरण में हुआ हो, जो जन्म से ही पाश्चात्य सभ्यता के रीति-रिवाज और

तौर-तरीकों से परिचित हो, अगर वह अंग्रेजी में निपुण बनता है, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, आश्चर्य तो तब होता है, जब वह नहीं बनता है। इसलिए अंग्रेजी में निपुण होना निरंजन की उपलब्धि ही थी।

मगर उनके व्यवहार में कहीं भी, किसी प्रकार का दुरभिमान न झलकता था। वे अंग्रेजी में दिखावे के लिए गिचपिच भी न करते थे। अपनी भाषा में बोलते, लिबास भी देहात में देहाती ही। बिल्कुल सीधे-सादे।

वे इंग्लैंड से वापिस आकर अपने गांव आये, और गांव के चप्पे-चप्पे में इस तरह घूम-फिर रहे थे जैसे वे अपना बचपन खोज रहे हों, या कोई ऐसी याद ताजी कर रहे हों, जिसका उनके जीवन में विशेष महत्त्व रहा हो। हर किसी से बातचीत करते, प्रेम से मिलते। ऐसा लगता था कि गांव के प्रति उनको अभिमान था, और गांव वालों को उनके प्रति अभिमान।

घूम-फिर कर जब घर पहुंचे तो घर के बराण्डे में लालटेन रख दी गई थी, और उनके मां-बाप, सीढ़ियों पर पैर पसारे बैठे थे, इस प्रतीक्षा में कि कब निरंजन पहुंचते हैं और कब अधूरी बात पूरी होती है।

निरंजन भी, उनके साथ कुछ पीछे हट कर सीढ़ियों पर पैर रख कर बैठ गये। सारा परिवार खुश था, अगर कोई फोटोग्राफर तब उनकी फोटो लेता तो वह परिवार का ही नहीं, उनके सुख-सन्तोष का भी चित्र होता।

निरंजन के पिता ने कहा, "तुम्हारी बहिन भी बड़ी हो गई है। शादी करनी है और आजकल बड़े दहेज मांगे और दिये जा रहे हैं। अच्छा लड़का मिलता है तो लाख-डेढ़ लाख से कम नहीं मांगता है। उसकी शादी तो करनी ही है···" पिता भूमिका बना रहे थे, और निरंजन चुप थे।

"तुम्हारी पढ़ाई में भी बहुत खर्च हुआ है, भगवान की दया से हम जैसे-तैसे कर्ज पूरा कर रहे हैं—मगर पास पैसा कुछ भी नहीं है। हमने सोचा था कि तुम्हारी शादी होगी, और जो कुछ मिलेगा उसमें से कुछ लेकर बहिन की शादी करेंगे—और तुम भी कब तक कुंवारे रहोगे?

"तुम समझदार हो, सब जानते-बूझते हो, हम तो गांववाले हैं, तुम सारी दुनिया देख आये हो, दुनियादार भी हो गये हो···" निरंजन के पिता कह रहे थे।

"हां, वहिन की शादी तो करनी है—देखेंगे कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा। मां, शादी करवा कर ही, क्या वहू के हाथ खाना परोसवाओगी···" निरंजन हंसते-हंसते इशारा किया।

"तुम भी खूब हो, लड़का भूखा है, और तुम इस तरह वातें कर रहे हो, जैसे फिर वातें करने का मौका ही न मिले ··"

निरंजन की मां ने अपने पति को मीठी-सी फटकार वताई। और वे सव हंसते-हंसते, खाना खाने अन्दर चले गये। उनकी वहिन भी भोजन में शामिल हो गई, नहीं तो शायद रात भर शादी की वातचीत चलती रहती।

निरंजन सोच न पा रहे थे कि मां-वाप को क्या जवाव दिया जाये।

॥ दो ॥

निरंजन गांव में कई दिन रहना चाहते थे। गांववालों का सुख-दुख जानना चाहते थे। लेकिन वे गांव में न रह सके। सिवाय शादी की वातों के वे वहां कुछ न सुन सके। सुवह-शाम पिता की जवान पर एक ही वात थी, शादी, शादी और रोज आने वाले विवाह के प्रस्ताव।

'क्या सारी जिन्दगी शादी से ही वंधी हुई है? जीना क्या शादी करना और कराना ही है। पाश्चात्य सभ्यता में जो इतना आसान हो गया है, उसको क्यों हमारी सभ्यता मे इतनी प्रधानता दी जाती है। इस प्रधानता के कारण क्या ऐसे ऊटपटांग सामाजिक मूल्य नहीं वन रहे हैं, जिनके कारण आदमी का जीवन एक मर्तवान में वन्द-सा हो जाता है?' निरंजन के मन में इस प्रकार के प्रश्न उठ रहे थे, और वे इन प्रश्नों के वारे में सोचने नहीं आये थे। लेकिन वे अपने को इनके वारे में सोचते या, अपने से ही झुंझला उठे।

बचपन के साथी, जो दो-चार रह गये थे, और जो खेती करके निर्वाह कर रहे थे, निरंजन से इस तरह बच रहे थे, जैसे विलायत जाकर वे आदमी से कुछ और बन गये हों। वह आत्मीयता, जिसकी भूख उनको गांव घसीट लायी थी, उनके व्यवहार में लुप्त थी। औपचारिकता आ गयी थी। फिर गांव में रह ही क्या गया था? लोग पढ़ने लगे थे। बड़े किसानों का, जो अपनी भूमि के बल पर गांव में काफी ऊंचे समझे जाते थे, प्रभाव कम हो गया था। वरना गांव वैसा ही था, जैसा कि उसे पांच-छः साल पहले छोड़ गये थे। 'मैं इतना बदल गया हूं कि बदला हुआ गांव भी बदला हुआ नहीं लगता, या गांव बदला ही नहीं है? शायद नहीं बदला है। बदला भी है, तो दिखाई नहीं देता है।' वे अपने में कहने लगते थे।

वे ही स्त्रियों के झुंड, सिर पर कलश, बतियाते, तालाब जाते और पानी लाते। आती-जाती मन्दिर की ओर सिर करके झुक जाती। वे ही किसान, कन्धे पर एक छोटी लाठी, बेफ्रीज, इधर-उधर देखते चले जाते। छोटे बच्चों की स्कूल जाती टोलियां। चेहरों पर अजीब उदासी। चाल-ढाल में भी चुस्ती नहीं, वही किरकिराती, ऊंचे पहियों वाली बैल-गाड़ियां। वही जीवन का ढांचा। ये सब सह लेंगे। परम्परा के नाम पर जिन्दगी को एक ढांचे में बांध लेंगे। और कर्म के नाम पर, हर कष्ट झेल लेंगे। क्या ये नहीं चाहते कि वे बदलें, अगर वर्ग संघर्ष एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है, तो क्या परिवर्तन और प्रगति की इच्छा भी स्वाभाविक नहीं है, क्यों ये लोग अस्वाभाविक हैं, निर्जीव से हैं?···कितनी ही बातें निरंजन के मन में उठती, उनके मन को मथ-सा देतीं। कुछ सोचने की कोशिश करते, तो पिताजी के प्रस्ताव उनके विचारों को मोड़ सा देते।

आखिर वे ऊब ही गये, और अपने पिता जी को कोई उत्तर दिये बगैर गांव से चले गये, कहते गये कि सब सोच-विचार करके मित्रों से सलाह-मशविरा करके, वे अपना निश्चय जल्द ही उनको लिख भेजेंगे। पिता नाखुश तो न हुए, निराश अवश्य हुए। माता को भी निरंजन का व्यवहार बड़ा अस्वाभाविक सा लगा। बहिन मन मसोस कर चुप रह गयी।

निरंजन अपने मित्र प्रसाद से मिलने चले गये। उनका गांव पास में

जिले में था। समृद्ध कुटुम्ब के समृद्ध सदस्य थे वे। पिता कभी बड़े जमींदार थे। कई गांव थे उनके। बड़ी हैसियत थी। जिले में जाना-माना परिवार था उनका। उनके घर के कितने ही लोग या तो बड़े-बड़े पदों पर थे नहीं तो व्यापार में, और कुछ इतने धनी कि शौकिया तौर पर राजनीति में थे।

अगर पुराना जमाना रहता, तो शायद निरंजन, प्रसाद से मैत्री तो क्या उनका परिचय भी शायद न पा पाते। बहुत फासला था, दोनों परिवारों में, फासला दूरी का ही नहीं, ऊंच-नीच का भी। दोनों इंग्लैंड में मिले थे। प्रसाद अर्थशास्त्री के विद्यार्थी थे। दोनों एक ही कमरे में रहते थे। भारत में उनके विचार कुछ भी रहे हों, पर इंग्लैंड के प्रवास में दोनों के विचारों में विचित्र साम्य आ गया था। दोनों ही पश्चिम के युद्धोपरांत परिवर्तित वातावरण से इस तरह प्रभावित थे कि उनको चिन्ता थी—भारत पिछुड़ा रह गया था। 'भारत में क्यों व्यक्ति अपने को स्वतन्त्र नहीं समझता ? क्यों वह अपने को दबा-दबा पाता है ? क्यों उसके मूल्य बदलते समाज के अनुरूप नहीं हैं ? क्या अतीत को सुरक्षित रखा जा सकता है ? क्या रखा जाना चाहिए ? क्या यह संभव है ? जब संभव नहीं, तो क्यों नहीं परिवर्तन की अपरिहार्य प्रक्रिया को आवश्यक दिशा दी जाये।' वे इन प्रश्नों पर दिन-रात बहस करते, और ऐसे लोगों से मिलते, जिनको क्रांतिकारी माना जाता था, उनके विचार भी कुछ वैसे बन गये थे, जिनको वामपन्थी कहा जा सकता है।

दोनों ही संकल्प करके आये थे कि वे अपना जीवन इस तरह देश के कल्याण में लगा देंगे, कि साधारण जनता में नयी चेतना आये और सदियों से चलती मानसिक दासता और पुरातन रूढ़िबद्ध चिन्तन खत्म हो। मनुष्य अतीतोन्मुख न होकर भविष्य की ओर उन्मुख हो और जिन्दगी को एक सजा न समझ कर वरदान समझे और जीवन में कुछ बने, जीवन से कुछ पाए, जीवन, समय का परिमाण न होकर, उपलब्धि का मानदण्ड बने।···उन्होंने कितने ही सपने देखे थे, और अब भी देख रहे थे।

श्री प्रसाद का घर तो क्या महल था। ऊंची चारदीवारी, लम्बा-चौड़ा अहाता, तिमंजिला विशाल मकान, चारों ओर बाग—एक बड़े खानदान का बड़ा खानदानी मकान। ड्योढ़ी थी, कभी वहां दरबान तैनात

रहते होंगे, लेकिन अब वह खाली थी। कुत्ते घूम रहे थे। मकान भी सूना था। जमींदारी क्या गई कि सब घर छोड़ कर, शहर में किराये के मकानों में रह रहे थे। उनको नगर की अनामिकता पसन्द थी, गांव का 'उपेक्षित' अस्तित्व नहीं। बड़ा मकान जब खाली होता है, तो कुछ ऐतिहासिक अवशेष सा लगता है, जिसमें जगह-जगह से मूक चीत्कार सुनाई पड़ते हैं, जो खाली होकर भी अजीब ढंग से भरा-सा, गूंजता-सा लगता है।

प्रसाद जी के पिता घर में न थे, न वे स्वयं ही थे। वे कहीं बाहर शहर गये हुए थे। निरंजन को खेद रहा कि बिना लिखे ही, अचानक यू आ गये थे। सोचा कि वापिस चले जायें। पर वक्त कुछ ऐसा कि वापिस जाना भी सम्भव न था। फिर अन्दर से प्रसाद की माता ने खबर भिजवाई कि उनको रहना होगा। निरंजन पहले प्रसाद की माता से नहीं मिले थे, पर वे जान गये थे कि प्रसाद ने उनके बारे में अपनी मां से अवश्य कह रखा था। वे परदा करती थीं, लेकिन निरंजन को लग रहा था कि वे हर दरवाजे से उनको हजार आंखों से देख रही थीं।

निरंजन के लिए एक बड़ा कमरा खोल दिया गया। बड़ा-सा पलग। बढ़िया, कीमती, पुराना फर्नीचर, किन्तु कमरे को देखकर लगता था कि उस अतिथि-कक्ष में अतिथि को आये हुए बहुत दिन हो गये थे। खिड़की पिछवाड़े के बाग में खुलती थी। बड़े-बड़े पेड़, उनकी हरी झुरमुट ही दिखाई देती थी।

थोड़ी देर में, एक बड़ी-सी ट्रे में चाय, एक सुन्दर नवयुवती लायी। मेज पर रख कर चली गयी। निरंजन न जान सके कि वह कौन थी। उसे देख कर कुछ अवाक्-से रह गये।

चाय पीकर वे पास वाले कमरे में ही, जहां ढेर सी किताबें अलमारियों में धूल चाट रही थीं, बैठ गये। तिपाई पर पत्र-पत्रिकाएं पड़ी थीं, वे उन्हें पलटने लगे। "मेरे लिए जन-चेतना के लिए काम करना आसान है, पर प्रसाद के लिए कितना कठिन है; उनका सारा परिवार इसीलिए तो बड़ा रहा है क्योंकि जनता ने, जाने-अनजाने उनको असख्य अधिकार दे रखे थे। एक और दृष्टिकोण से देखा जाये, तो प्रसाद के लिए जन-कल्याण का काम आसान भी है। वे बिना रोजी-रोटी के चक्कर में पड़े,

आदर्शों के लिए काम कर सकते हैं। मैं ? कुछ भी हो, संकल्प संकल्प है।' वे पलट पत्रिकाएं रहे थे, लेकिन अन्दर यही उथल-पुथल हो रही थी। प्रसाद कब आयेंगे ? यह जानने के लिए उन्होंने अन्दर जनाने में खबर भिजवाई। मालूम हुआ कि वे कभी भी आ सकते हैं, आज रात नहीं तो कल सवेरे। कोई जरूरत हो, तो कहला भेजें—वही स्त्री फिर कह कर चली गई।

मकान की ही शायद खूबी है कि निरंजन, जिनको बड़ी-बड़ी सुन्दरियां ठण्डा छोड़ जाती थीं, उस स्त्री को इस तरह देख रहे थे, जैसे पहली बार स्त्री देख रहे हों—एक विचित्र आकर्षण, विचित्र शालीनता। क्यों ऐसा हो रहा था, यह सोचकर वे अपने ऊपर ही हंसते रहे, और गद्देदार पलंग पर करवटें लेने लगे।

।। तीन ।।

अभी पूर्व में लाली ही थी कि निरंजन उठ गये और बाहर पेड़ों की ओर देखने लगे—कौओं का झुण्ड कांय-कांय कर रहा था और वह बड़ा प्रासाद निर्जन सा लग रहा था।

मुड़कर ड्योढी की ओर जो देखा तो वहां दो-तीन रिजर्व पुलिस वाले गश्त कर रहे थे। वही डयोढ़ी, जहां पिछले दिन कुत्ते परेड कर रहे थे, वहां अब सिपाही थे। 'क्यों थे ? क्या रात में यहां पहरा दिया जाता है ? पहरा भी दिया जाता हो तो सरकारी पुलिस का यहां क्या काम ? क्या कुछ हो-हा गया है ? कहीं मेरा पीछा तो नहीं किया जा रहा है ? मैंने किया ही क्या है ? क्या लण्डन से मेरे बारे में कोई रिपोर्ट आयी है ? अगर कोई रिपोर्ट आयी भी हो तो ये लोग अब ही क्यों चेते ? मैं तो खुल्लमखुल्ला घूम-फिर रहा हूं ? नहीं, कुछ और बात है। क्या बात है ?'

निरंजन के विचार भिन्न-भिन्न दिशाओं में दौड़ने लगे। वे तरह-तरह के अनुमान करने लगे। पर वहां पुलिस क्यों थी, इसका उत्तर नहीं पा रहे थे। उन्होंने फिर ध्यान से देखा। पुलिस वालों की वरदी से लगता था कि वे अभी ही आये हैं। चुस्ती थी उनकी चाल में, फिर दूर देखा, चार-दिवारी के बाहर, जहां कभी बड़े-बड़े पेड़ रहे होंगे, दो-चार जीर्ण खंडी थीं। मामला उलझा हुआ लगता था। 'क्या है?'

'कहीं ये प्रमाद के लिए तो नहीं आये हैं? उसने भी क्या किया है कि वे उसके घर को यूं घेर लें? यहां जो नहो सो कम। अगर आदमी को पकड़ना ही हो, तो पकड़ने के हजार बहाने मिल ही जाते हैं। पहले पकड़ो फिर देखें क्या होना है। लेकिन प्रमाद कोई अदना आदमी तो है नहीं कि आये और मुश्कें बांधकर चौकी ले गये। बड़े घर का बड़ा आदमी है, उसके इतने सारे लोग, इतनी बड़ी साख है कि वे उस पर आंच नहीं आने देंगे। फिर क्या बात है?'

निरंजन बाहर जा सकते थे, खुद पुलिस वालों से पूछ सकते थे। किंतु वैसा करना उनको जोखिम से खाली न लगा। 'दुनिया भर के प्रश्न किये जायेंगे। मैं अतिथि ही तो हूं, वह भी करीब-करीब अनजाना ही। प्रसाद क्यों नहीं आया है?' उन्होंने जानना चाहा। पर सारी जगह इस तरह सुनसान थी कि पुलिस वालों की गश्त के बावजूद सब सोते लगते थे। किसी को क्या उठाया जाये? उठ जायेंगे, तो खुद आयेंगे।

पुस्तक पढ़ कर उन्होंने अपने को निश्चिंत करना चाहा, पर निश्चिंत नहीं हो पाते थे। पॉकेट रेडियो सुनना चाहा, पर उसमें से भी कोई अजीब सा संगीत आ रहा था। कोई समाचार नहीं, आध घंटे तक कहीं से कोई खबरें आने की आशा न थी। वे अपने कुतूहल को काबू न कर पा रहे थे। अजीब पशोपेश में थे।

वे नित्य कृत्यों में लग तो गये, लेकिन बाहर गश्त करने वाले पुलिस-मैन, उनका पीछा करते-से मालूम होते थे। ये लोग भी क्या हैं कि बाहर जरूर कुछ न कुछ हुआ होगा, और ये घोड़े बेच कर सोये हुए हैं। वे झुंझलाये। आखिर उन्होंने कमरे में रखी घंटी बजा ही दी। वही लड़की कमरे में आयी।

सवेरे के समय भी उसके चेहरे पर एक आश्चर्यजनक ताजगी थी, कोई उदासी नहीं। अजीव फुर्ती। कपड़ों पर भी कहीं सलवटें नहीं—कहीं यह लड़की खड़ी-खड़ी तो नहीं सोती है ? चाय के लिए आर्डर देना बेवकूफी था क्योंकि रसोइया तब तक न जागा होगा। फिर घंटी क्यों बजायी थी ? कुछ न कुछ तो कहना ही होगा।

"क्या चाय मिल सकेगी ?"

"बहुत अच्छा," वह कमरे से बाहर गई, और अगले क्षण ही थर्मस ले आयी। और एक कप में चाय उड़ेल कर निरंजन के सामने रख दी।

"इतनी जल्दी ?"

"जी हां, रात को ही बनाकर थर्मस में आपके लिए रखवा दी गयी थी।"

निरंजन मुस्कराये। उन्होंने उससे ही पूछा, "यहां पुलिस क्यों आयी हुई है ?"

"पुलिस ?"

"हां, वह देखिये, ड्योढ़ी पर, और ड्योढ़ी से परे खड़ी दो-चार जीपें ···देखिये न।"

वह लड़की अपना घाघरा समेट कर, धीमे-धीमे मटकती-मटकती, खिड़की की ओर गई, अगर जवानी की कोई चलती-फिरती तस्वीर बनाई गयी, निरंजन ने सोचा कि वह उससे बढ़िया नहीं हो सकती थी। उस उद्विग्न अवस्था में भी, उनके दिल में उसको देखकर मुलायम-सी गुदगुदी होने लगी, फिर उन्होंने नजर मोड़ ली···औरतों में दूसरों के मनोभावों को भांपने की अद्भुत शक्ति जो होती है।

"है न ? देख लिया ?'

"है तो !"

"क्या प्रसाद आ गये हैं ?"

"जी नहीं।"

"क्या उनके आने की कोई उम्मीद है ?"

"कल ही आना था, जब नहीं आये हैं, तो आज अवश्य आयेंगे।"

"क्या कोई फोन आया था ?"

"शायद नहीं।"

निरंजन को उसकी आवाज बड़ी पसन्द आ रही थी। मीठी-मीठी आवाज, प्यारा प्यारा लहजा। नपे-तुले शब्द।...आकर्षक शालीनता।

"अच्छा।"

लड़की बाहर गई, और बराण्डे में कई के एकसाथ चलने की आवाज आयी। फिर जाना जा सकता था कि सब उचक-उचक कर बगल के कमरे की खिड़की में, बाहर ड्योढ़ी की ओर देख रहे थे। पुलिस की उपस्थिति की खबर उस लड़की ने औरों को दे दी थी। और उस सुनसान महल में दबा-दबा-सा तहलका मच रहा था।

निरंजन खिड़की में से बाहर देख रहे थे। दो-चार मिनट बाद दो-एक नौकर ड्योढ़ी पर पुलिसवालों से बात कर रहे थे, अनुमान किया जा सकता था कि घर की मालकिन ने उनको वहां भेजा होगा। वे अवश्य चिन्तित होंगी। पुलिस उस महल में, बुलाने पर ही दावतों में, जलसों में भाग लेने आती थी। बिना बुलाये तो कभी न आयी थी। फिर क्यों आयी?

निरंजन ने देखा कि नौकर फिर घर में वापिस आ रहे हैं और जीप के पास गांववालों की भीड़ इकट्ठी हो रही थी। निरंजन बाहर बराण्डे में आये और उस नौकर को बुलाया जो पुलिस वालों से बात करके आया था।

"क्यों, क्या हो गया है? पुलिस यहां क्यों है?"

"साहब, यह तो लम्बा किस्सा है, पिछले कई दिनों से कुछ लोग इस महल पर हमला करने की सोच रहे हैं।"

"हूं, तो कल क्या हमला हुआ था?"

"अब धीमे-धीमे ही यह मालूम होगा। घर में न बड़े साहब हैं, न छोटे ही। यही मौका देखकर वे शायद हमला करना चाहते होंगे।"

"हूं।"

"पुलिस वालों का कहना है कि यहां हमला हो सकता था, और पुलिस इस बारे में बेखबर भी न थी।

"अच्छा।"

"सुनते हैं कि हमलावरों ने यहीं पास में, एक और गांव में हमला

किया। वड़े वावू के एक रिश्तेदार के ही घर, उनका एक नौकर मारा गया और कई हजार रुपयों के गहने चले गये। सुनते हैं, मालिक को एक खम्भे से बांधकर खूब पीटा गया। क्या आड़े दिन आये हैं, लोग अन्नदाताओं का ही खून कर रहे हैं। सब नमकहराम हैं।"

"इसी वजह से क्या यहां पहरा है?"

"जी।"

"वड़े साहब और छोटे साहब कब आ रहे हैं?"

"अब आयेंगे ही, एक पुलिस वाला कह रहा था कि वे दोनों अपने उन रिश्तेदार के घर हैं। सब जगह कुहराम मचा हुआ है। इन लोगों के मारे नाकों दम है।"

"हूं।" निरंजन सिर के पीछे हाथ रखकर, फिर दाढ़ी की ओर देखने लगे। पहले तो वे सोच रहे थे कि अगर प्रसाद सवेरे तक न आये, तो वे चले जायेंगे। समय की कमी थी। कई काम थे। वे फिर कभी प्रसाद से सलाह-मशविरा कर सकते थे। पर उस हालत में जायें भी तो कैसे जायें?

वे सोचने लगे—'ये हमलावर कौन हैं? कोई मामूली चोर-चपाटे तो हैं नहीं, होते तो इतने वड़े घरों पर धावा न वोलते।' वे समाचारपत्रों में, उनके छुटपुट हमलों के वारे में पढ़ते आये थे, पर उन्होंने कल्पना भी न की थी कि उनके होते, इस प्रकार की घटनाएं गुजरेंगी। ये राजनीतिक घटनाएं थीं, और राजनीतिक घटनाओं में उनकी दिलचस्पी थी। उनको उस घर में प्रसाद की प्रतीक्षा करने का एक और कारण मिल गया था।

॥ चार ॥

दोपहर वाद, प्रसाद और उनके पिता जी घर आये। उनके आने से पहले तो महल में काफ़ी सरगर्मी रही, पर उनके आते ही वह सब इस तरह दब

गया जैसे हल्की बारिश के बाद धूल दब जाती है, इस प्रकार का सन्नाटा छा गया।

पहली बार निरंजन, प्रसाद के पिता को देख रहे थे। प्रभावशाली व्यक्तित्व, भारी-भरकम, लहीम, दबंग। भयावना रौब था। उनके चेहरे पर कहीं कोई सौम्यता नहीं। बड़ी-बड़ी आँखें, बहुत ही गंभीर। छोटे-मोटे आदमी तो उनको देखते ही कांपते होंगे।

वे आये, खाना-वाना खाया और अपने कमरे में चले गये। किसी से कोई बातचीत नहीं। कोई पूछताछ नहीं। बताया गया कि यह उनकी आदत ही थी। मिलनसारी उनमें बिल्कुल न थी। फिर इस घटना के बाद वे शायद चिन्तित होंगे, किन्तु वे अपनी चिन्ता व्यक्त करते-से न लगते थे। यह भी उनका स्वभाव था।

प्रसाद स्नान कर-करा कर निरंजन के कमरे में आये। गले लगे। पर मिलने में एक अजीबकृत्रिमता थी,वह आत्मीयता नहीं जो प्रायः वे दिखाते थे। शायद आत्मीयता रहती, यदि ग्राम में उपद्रव न हुआ होता पुलिस की धर-पकड़ न हुई होती।

"खाना-वाना खाया कि नहीं?" उन्होंने पूछा।

"सब हो गया है?" वे उस लड़की की ओर देख मुस्कराये।

"क्यों पार्वती, इनकी देखभाल में कोई कसर तो नहीं रखी?"

प्रसाद का कहना था कि वह लड़की झेंप गई। निरंजन को न मालूम क्यों खुशी हुई, उसका नाम जानकर।

"आओ, थोड़ा बहुत और खा लो।"

"खाऊँगा तो नहीं, साथ जरूर बैठूंगा।" निरंजन, प्रसाद के साथ-साथ एक बड़े कमरे में गये। वहां बड़ी मेज थी, उसके चारों ओर, दस-पन्द्रह बड़ी-बड़ी कुर्सियां···। चारों कोनों में और मेजें भी लगी हुई थीं। छत पर से झाड़फानूस और बड़े-बड़े दरवाजों में कीमती मोटे परदे लटक रहे थे। ऐसा लगता था कि किसी बड़े होटल का वह शानदार भोजन कक्ष हो। और उस बड़े हाल में वे दोनों ही थे। कभी इस घर में, इतने लोग रहते होंगे, कि खाने के समय यह भरा रहा होगा। निरंजन ने देखा कि पास वाले कमरे में प्रसाद की मां बैठी थी, नौकर भोजन परोस रहा था।

"अगर तुम होते तो शायद मैं उसी दिन चला जाता, न तुम्हारी किताबें पढ़ता, न घर ही देख पाता।"

"भाई, आने से पहले लिख तो देते ?"

"हां, लिखना तो चाहिये था, शायद गांव में एक-दो दिन रहता अगर मां-बाप शादी का रिकार्ड नहीं बजाते—शादी, शादी। जैसे मेरी शादी करके वह अपनी जिम्मेवारी से वरी होना चाहते हों...यह नहीं जानते कि मेरी शादी मेरी ही जिम्मेवारी है, न कि उनकी।"

"हां, शादी की बात तो यहां भी हो रही थी, वहां भी हो रही थी ?" प्रसाद शायद कुछ और कहते, लेकिन सहसा चुप हो गये, और उस कमरे की ओर देखने लगे जहां उनकी मां वैठी थीं।

"पटी-पटायी शादियों का रिवाज जब खतम हो जायगा, तब शायद यकायक ऐसा सामाजिक वातावरण वनेगा कि व्यक्ति उठेगा और उसके साथ प्रगति होगी।" निरंजन कह रहे थे, और प्रसाद इस प्रकार खाना खा रहे थे, जैसे निरंजन वेमौके, कुछ सही वात कर रहे हों, और अकाल में कही ठीक वात भी अनुचित-सी लगती है।

निरंजन चुप हो गये। सोचा था कि प्रसाद स्वयं उस घटना के वारे में कहेंगे, जिसके कारण उनको घर आने में देर हो गयी थी, पर वे उसका जिक्र भी नहीं कर रहे थे। आखिर उन्होंने ही पूछा—

"आज यहां पुलिस क्यों है ? कल जब आया था तब ड्योढ़ी पर कोई न था।"

"हां, मामला यहां गरमा रहा है, अजीव हालत है, कभी यह जमींदारी का गांव था, हमारा ही गांव था, जमींदार सोचते हैं, कि यह अब भी उन्हीं का गांव है, और लोग सोचते हैं कि वे खुद मालिक हैं, उनमें एक प्रकार की चेतना आ गई है, पर इससे जमींदारों और गांववालों के सम्बन्ध में तनातनी आ गयी है।"

"हां, यह इसका पहलू जरूर है..."

"आस-पास यहां एक गुट काम कर रहा है...जो हमको दुनिया से ही उखाड़ फेंक देना चाहते हैं, यह नहीं सोच पाते कि हम भी वदल सकते हैं।

"हां, लेकिन..." निरंजन कुज कहना चाहते थे, पर न कहना ही

शायद उस समय उचित समझा।"

"यह उसी गुट की करतूत है।"

"हूं।"

"हू, और मैं पिता जी बाहर गये हुए थे। अगर हम यहा होते, तो शायद हम पर ही हमला किया जाता।"

"अच्छा ?"

"हम पर न किया तो हमारे रिश्तेदार पर कर दिया।"

"ये लोग हैं कौन ?"

"ये ही, इस गाव के लोग, इनमें से कुछ पढ़-लिख गये हैं, मगर बेकार हैं, बेकारी मे ही इस तरह के काम करते रहते हैं।"

निरंजन को ताज्जुब हो रहा था, चूंकि प्रसाद कभी इस प्रकार के कामों के समर्थक थे, अब जब उन पर ही आ पड़ी तो उनकी निन्दा करने लगे। जब तक और कही लगती रही, तो वे उसके पक्ष मे थे, और जब अपने ही आगन मे आग की धमकी दी गई तो वे उसके विरुद्ध हो उठे, फिर भी इतनी जल्दी कोई निष्कर्ष निकालना अच्छा नही है।"

"वे रिश्ते में हमारे चाचा लगते हैं—बिल्कुल गौ आदमी, उनको इन लोगों ने पूरी तरह मारा, अब, अब और तब की हालत में हैं। हो सकता है, बच जायें, उन बिचारो ने कुछ भी तो नही किया था।"

निरंजन कहना चाहते थे, "बात व्यक्ति की नही है, वर्ग की है, बगावत वर्ग के खिलाफ है, व्यक्ति के खिलाफ नहीं, व्यक्ति तो प्रतीक है··· इस तरह की घटनायें भी एक उबलती परिस्थिति के बाह्य प्रतीक हैं।" उन्होंने कुछ नहीं कहा।

"पर वे लोग···तुम्हारे विचार तो जानते ही होंगे ?"

"हां, शायद, इनमे से कई को तो हमने ही पढ़ाया-लिखाया है, और आज वे हमारी उदारता का यू जवाब दे रहे हैं।"

"उदारता भी एक प्रकार की सुरक्षा है, दौलतवाले इसलिए उदार होते हैं कि लोग उनके घर न लूट लें ··" निरंजन कहना चाहते थे।

"हमारे खानदान ने क्या नही किया, स्कूल खोले, हस्पताल खोले— खैर," प्रसाद कहते-कहते रुके, जैसे यकायक उनको याद आ गया हो।

इंग्लैंड में उनके विचार कुछ और थे, और उन विचारों को निरंजन भी अच्छी तरह जानते थे।"

"मगर, खैर, हटाओ···" निरंजन ने अपनी जबान को लगाम दी तब तक प्रसाद जा चुके थे, कितने ही व्यंजन, कितनी ही चीजें। कुछ इधर छुआ, कुछ उधर छुआ, और भोजन खतम। खानदानी आदमी का खाना खाने का अजीब खानदानी तरीका।

"तो, यह पुलिस···"

"पिता जी चाहते हैं कि जब तक स्थिति शान्त नहीं हो जाती, यह यहीं रहे···मैं चाहूंगा कि तुम भी यहां कुछ दिन रहो।"

"हूं।"

"क्या करने जा रहे हो? वह नौकरी ले रहे हो कि नहीं?"

"नौकरी तो इंग्लैंड में रहते ही मेरे लिए पक्की हो गई थी। लेकिन मैं ही हिचकिचा रहा हूं।"

"मत हिचको, ले लो।"

"अच्छा, पर···" निरंजन को मित्र की सलाह पर आपत्ति थी।

"हिन्दुस्तान उतना सुहावना नहीं है, जितना कि सात समुद्र पार से दिखाई देता है। यहां कोई ऐतिहासिक प्रक्रिया ठीक तरह से नहीं चलती। मार्क्स के सिद्धान्त और कहीं लागू होते हों, या न होते हों, यहां शायद अभी नहीं होते। यहां तो जंगल-रूल है।"

निरंजन को आश्चर्य हो रहा था कि क्या यह वही व्यक्ति है, जो उसको मार्क्स के सिद्धान्तों पर, साम्यवाद के आदर्शों पर घंटों लेक्चर दिया करता था। तब वे अपने घर के, घर की रईसी के वारिस भी तो नहीं थे। अब इन्होंने अपनी तर्ज ही बदल दी है, दुनियादार आदमी हैं।

"मैं कहता हूं, तुम नौकरी ले लो। यह तुम्हारे आदर्शों के लिए ठीक भी है, नये विचारों का नया भारत विश्वविद्यालयों में बन रहा है, तुम बना सकते हो।···" प्रसाद कह रहे थे, और निरंजन का आश्चर्य और बढ़ रहा था। ये भी खूब है, कभी इधर बातें करते हैं, तो कभी उधर। दुतरफा रवैया, शायद दुनियादारी का यही तकाजा है।

निरंजन उनकी आदत जानते थे, एक बार जब बात करनी शुरू करते

वे तो बात करते ही आते थे।

"मैं जानता हूं कि तुम क्या कहना चाहते हो? वही उसी की पूछ होती है, जो कुछ छोड़कर राजनीति में उतरते हैं। अगर गांधी और नेहरू ने बैरिस्टरी न छोड़ी होती तो वे दो कौड़ी के नहीं समझे जाते। कितने ही हमारी तरह के लोग हैं जो जोश में राजनीति में कूद पड़े, फिर वे इस तरह पछाड़े और लथाड़े गये कि वे न घर के रहे न घाट के ही, तुम्हारी गुमारी भी कहीं उनमें न हो। पहले प्रोफेसर बनो, फिर देखा जायेगा।"

"पर जो काम हम करना चाहते थे, उसके लिए तो प्रोफेसरी करना कोई जरूरी नहीं है।"

"अभी तुम्हारी आंखें नहीं खुली हैं। खुलेंगी…" वे सब तब अपने कमरे में आ गये थे। बड़ा सा कमरा, ऊंचा पलंग, तरह-तरह का कीमती फर्नीचर। रईस के रईसाना ठाट। पार्वती, फलों की तश्तरी लिए खड़ी थी।

"तुम आराम करो, फिर कभी मिलेंगे।"

"…तो तुम जा रहे हो? नहीं, नहीं, अभी तो बहुत बातें करनी हैं। मैं तुम्हारे हित की बात कर रहा हूं, बाहर न जाओ। तुम भी आराम करो, मैं सब इन्तजाम करवा दूंगा…" प्रसाद बिस्तर पर से उठे। और निरंजन को उनके कमरे में छोड़ आये। वे शायद न जानते थे कि उन्होंने उनके मन में एक तूफान पैदा कर दिया था, जो उनको उस आरामदेह कमरे में भी आराम नहीं लेने देगा।

॥ पांच ॥

निरंजन को ऐसा लग रहा था मानो सारा काम उस बड़े घर के भोजन में ही समाप्त रहता हो, हमेशा खाना, नहीं तो खाने की तैयारी। विश्राम का यह कार्यक्रम उनके स्वभाव के अनुकूल न था।

शाम के खाने पर, जब निरंजन गये तो प्रसाद के पिता उस बड़ी मेज के एक सिरे पर बैठे थे, और करीब आधी मेज पर खाने-पीने की चीजें सजा कर रखी गई थीं। निरंजन को तुरन्त सूझा कि मेज इसलिए बड़ी न थी कि अधिक लोग उस पर खा सकें, बल्कि इसलिए थी कि कम लोग अधिक-से-अधिक खा सकें।

प्रसाद के पिता निरंजन का इन्तजार कर रहे थे। उनके साथ पार्वती बैठी थी। मुस्करा रही थी। निरंजन के मुंह पर भी मुस्कराहट दौड़ पड़ी। प्रसाद भी आये।

झाड़फानूस चमचमा रहे थे, उनमें छोटे-छोटे बिजली के बल्ब जल रहे थे। परदे एक तरफ सरका दिये गये थे। और ऊंचे-ऊंचे दरवाजे और खिड़कियों से बाहर की चांदनी दिखाई दे रही थी। और सम्पन्नता के साथ अजीब सन्नाटापन।

प्रसाद के साथ निरंजन बैठे। उन्होंने उनका अपने पिता जी से परिचय कराया : "ये मेरे साथ इंग्लैंड में थे···हमारे ही प्रान्त के हैं···"

"हूं," प्रसाद के पिता मुस्कराये। मुस्कराने से साफ था कि प्रसाद ने उनके बारे में, उनसे पहले भी कह रखा था।

"आपको आराम है न ?" उन्होंने गम्भीरता के साथ, आत्मीयता का कुशलप्रश्न पूछा। उनके व्यवहार में चौंकानेवाली तटस्थता थी।

'जी।"

"आपको तो आजकल···" वे कहते-कहते रुके, "आपकी तरफ तो इस तरह के हिंसाकाण्ड नहीं हो रहे हैं ?"

"जी, अभी तो नहीं···" निरंजन प्रसाद की ओर देखते हुए मुस्कराये।

"हूं," प्रसाद के पिता ने खाना शुरू कर दिया था। पार्वती उनको परोस रही थी, और स्वयं खा भी रही थी। न मालूम यह भी क्या रिवाज था कि प्रसाद की माता वहां न थीं। पर जाना जा सकता था कि वे पास के कमरे में बैठ कर सब देखरेख स्वयं कर रही थीं।"

"आप पर तो सीलिंग का असर नहीं हुआ है ?" प्रसाद के पिता ने पूछा। निरंजन समझ सकते थे, कि भूमि के मापदण्ड से उनकी वैयक्तिक

स्थिति और स्तर का अनुमान करने का प्रयत्न कर रहे थे। उनके समाज में बड़प्पन का मापक सिर्फ मिल्कियत ही थी।

"निरंजन के पिता समझदार हैं। उन्होंने सीलिंग के आने से पहले ही अपनी जमीन का बंटवारा कर लिया था, बहुत कुछ बेच-बाच भी दी थी।" प्रसाद ने स्वयं कहा, कि कहीं उनके मित्र को उनके पिता अचानक नीचा न देखने लगें। निरंजन भी यह समझ गये और मुस्करा दिये।

"ये चाहते हैं कि खेतीबाड़ी बढ़े, पैदावार बढ़े। मगर कैसे बढ़ेगी, जब जमींदार के ही हाथ-पैर काट दिये गये तो ये कंगाल क्या खेती करेंगे, और क्या पैदावार पैदा करेंगे। सब उल्टे-सीधे काम हो रहे हैं। जब ऐरे-गैरों के हाथ में सरकार आ जाती है, तो अंधेर नहीं होगा, तो क्या होगा? सब चौपट हो जायेगा, और हो रहा है।" प्रसाद के पिता कह रहे थे। निरंजन मुस्कराना बंद करके उनकी ओर शिष्टतावश मुंह करके उनको न सुनने का प्रयत्न करने लगे। वे उनके विचार जानते थे, और उनको वे पसन्द भी न थे।

"क्या आपका भी यही ख्याल है?" निरंजन ने पार्वती को सम्बोधित किया। 'आप' पर एक अजीब जोर था। वह समझ सकती थी। वह मुस्करा दी। कोई जवाब न मिला, उन्होंने अपना सिर नीचा कर लिया।

"उत्पादन के सब साधनों का राष्ट्रीयकरण हो, यह कोई नारा नहीं है, अगर ऐसा हुआ तो जमीन के लिए जो छीना-झपटी हो रही है, वह न होगी। जमीन पर काम करने वाले और जगह भी काम करने लगेंगे, तो रोजगार का प्रश्न हल हो जायेगा, बात रोजगार की ही तो है।' ''

प्रसाद कह रहे थे। निरंजन को समझ में न आ रहा था, कि क्यों प्रसाद अपने विचारों को तोड़-मरोड़ रहे थे। क्यों परिवर्तन आ गया था, यह परिवर्तन था या दिखावा। निरंजन अपने को काबू में न रख सके, बोले—

"भूमि भी तो उत्पादन का साधन है। इसका राष्ट्रीयकरण होना चाहिए।"

प्रसाद ने उनकी ओर घूरा। उनके पिता की नजर भी उन पर [illegible] गई जैसे अपनी नजर से उनको दाग दे रहे हों। [illegible]

बोला।

थोड़ी देर बाद, जैसे अतिथि से खाने पर न बोलना, अशिष्टता हो, प्रसाद के पिता जी ने विषय बदलते हुए पूछा, "क्या आपका विवाह हो गया है ?"

"जी नहीं," निरंजन उत्तर प्रसाद के पिता को दे रहे थे और न मालूम क्यों पार्वती की ओर नीची नजर किये देख रहे थे।

"आपकी शादी की भी बातचीत चल रही होगी।"

निरंजन ने कहा, "सिवाय शादी के और बात ही नहीं हो रही है।" प्रसाद मुस्कराये। निरंजन ने उनसे कहा, "तो यानी आपकी शादी की भी बातचीत हो रही है ?"

"हां।"

निरंजन को यह सुनकर भी आश्चर्य हुआ। उन दोनों ने इंग्लैंड में शपथ तो नहीं ली थी, लेकिन शपथ सदृश निश्चय अवश्य किया था कि भारत जाकर विवाह नहीं करेंगे और सामाजिक कार्य में जुट जाएंगे। विवाह के साथ इतने स्वार्थ जुड़े हुए हैं कि समाज की सेवा नहीं की जा सकती। और जिस तरह के सामाजिक कार्यक्रम ये बना रहे थे, उसमें व्यर्थ स्त्री को तंग करना अव्वल दर्जे की अनैतिकता उनको लग रही थी। और अब प्रसाद अपने इस निश्चय से पलट गये, आखिर हो क्या गया है ? क्या वे सब बड़ी लम्बी-लम्बी बातें खाली दिमाग की खुमारभरी उड़ान ही थीं।

"कब शादी हो रही है ?" निरंजन ने प्रसाद के पिता से पूछा।

"हम उसी सिलसिले में बात करने गये थे, कि लोगों ने यहां इस तरह उपद्रव मचा दिया कि कुछ न पूछो। न घर में रहते बनता है, न छोड़ते ही। खैर···" प्रसाद के पिता कहते-कहते सहसा रुक गये और कमरे के एक कोने से आने वाला भीना-भीना संगीत सुनने लगे। संगीत तो शुरू से ही आ रहा था, पर लगता था कि ध्यान अभी ही उसकी ओर गया था।

ये अभी खाना खाकर उठे ही थे, और नीचे बगीचे की ओर जा रहे थे कि ड्योढ़ी पर से दो नौकर भागे-भागे आये। प्रसाद के पिता इस तरह शान से चलते रहे, जैसे वे हर घटना के लिए सन्नद्ध हों, और दिन ऐसे

आहे थे, कि कुछ भी कभी भी हो सकता था।

वे आराम से कुर्सी पर बैठ गये। पान मुख में रखा। निरंजन और प्रमाद भी, पान लेकर उनसे कुछ हटकर बैठ गये। प्रसाद के पिता ने इत-मीनान से पूछा, "क्यों, क्या बात है?"

"हुजूर, गाव का मदिर भी लुट गया है। पुजारी बुरी तरह घायल कर दिया गया है। दस-पंद्रह लोग बदूक लेकर आये, कि मदिर मे घुसे, और मूर्ति पर लगे गहने ले गये, जब पुजारी ने शोर किया तो उसको बेतहाशा पीटा गया, और अब वह बेहोश पड़ा है।"

"अच्छा?" प्रमाद के पिता तुरत कुछ न बोले। वे पान चबाते जा रहे थे। कुछ देर बाद बोले, "यह अभी ही हुआ है?"

"जी।"

"पुलिस को मालूम हो गया है?"

"जी।"

प्रसाद और निरंजन ने ड्योढ़ी की ओर नजर डाली। वहां गश्त करते सिपाही न थे। वे जान गये कि ड्योढ़ी पर तैनात पुलिस मंदिर गई होगी।

"जो पुलिस घटना के बाद भी सोती है, वह घटना से पहले भला कैसे जगी होगी···" प्रमाद ने कहा।

"पुलिस के होते ही यह सब हो रहा है, ठीक उनकी नाक के नीचे ही, क्या हौसला हो गया है इन लोगों मे। आजकल जो न हो, सो कम··· है।" प्रसाद के पिता कुछ सोचने लगे।

उन्होंने आज्ञा दी, "पुलिस क्या करेगी, अपने लोग हैं न? बेनूटया, मूरख्या वगैरह, उन सब से कहो कि वे ड्योढ़ी पर सोयें, और कल सवेरे हमें मिलें।" वे आदमी हाथ मलते चले गये।

"यहा, ये लूट-खसोट, डकैतियां रोज हो रही है। आप बेफिक्र रहें," प्रमाद के पिता ने निरंजन को आश्वासन दिया, "अभी ही तो आप आये हैं, दो-चार दिन रहिये। आपके मित्र का भी मन लगेगा। ये बड़ा अकेला-पन महसूस कर रहे हैं। इन हालात में आप जाइयेगा भी तो कैसे जाइ-येगा? दो-चार दिन बाद जा सकते हैं।"

प्रसाद के पिता का आग्रह भी था, और निरंजन भी वहां रहना चाह

थे। उनको लग रहा था, कि उनको अध्ययन करने का विषय ही नहीं। स्थाल भी, स्थल भी मिल गया था।

वे प्रसाद के कमरे में, बहुत देर तक गपशप करते रहे। निरंजन को लग रहा था जैसे वे एक रास्ते से हटकर, अलग-अलग रास्तों पर जा रहे हों।

॥ छः ॥

न मालूम धमकी देने वाले क्या सोचते होंगे, धमकियां एक बार नहीं कई बार आयी थीं, पर श्री प्रसाद के परिवार में, और घर में खास खलबली न हुई थी। नौकर-चाकर जरूर त्रस्त थे। हो सकता है, मालिक भी हों। लेकिन उनके व्यवहार से यह जानना कठिन था कि वे भयभीत थे।

किन्तु यह देखा गया कि घर का सामान कहीं भेजा जा रहा था। दिन में लोरियां आतीं, और पिछवाड़े में लायी जातीं। प्रसाद के पिता वहीं थे। और उनकी देख-रेख में यह सब हो रहा था। और वह भी इस तरह जैसे कि इसकी बहुत दिनों से तैयारी हो रही हो और आने वाली धमकियों का इससे कोई सम्बन्ध न था।

प्रसाद सवेरे निरंजन से मिलने उनके कमरे में आये। पार्वती उनके साथ थीं। न मालूम निरंजन उन पर मुग्ध-से थे। विवाह के बारे में वे भले ही विमुख रहे हों परन्तु स्त्री सुख से वे विमुख न थे। लंदन में भी उन्होंने ब्रह्मचर्य नहीं निभाया था। केवल विवाह के बारे में होने वाला भाव-सौदा उनको पसंद न था। पार्वती को देखते ही, उनके मन में एक अजीब-सा उबाल आने लगता।

इससे पहले कि निरंजन कुछ पूछते, प्रसाद ने ही उनसे कहा, "तुम भी शादी कर लो। कर लो न।" एकसाथ प्रसाद और निरंजन ने पार्वती

की ओर देखा और वह मुस्कराती-मुस्कराती कमरे से बाहर चली गई, लजाई-लजाई-सी।

"मैं नहीं जानता कि मुझे यह पूछना चाहिये कि नहीं, पर जब तक पूछ नहीं लेता, तब तक शायद चैन भी न हो।…हमने और तुमने सोचा था कि विवाह वगैरह तब तक नहीं करेंगे, जब तक हम अपने काम में, एक दिशा में अग्रसर न हो जायेंगे।"

'हूं, हां, मैं जानता था कि तुम्हें यह सब सोच रहा है, इसलिए ही मैं स्वयं चला आया। देखो, अब परिस्थितियां बदल रही हैं यदि देश के प्रति, समाज के प्रति मेरा कर्तव्य है, तो परिवार के प्रति भी मेरा कर्तव्य है।"

"यह बात तो सभी करते हैं, लेकिन प्राथमिकता किसको दी जाय? परिवार की परिभाषा ही साम्यवाद के परिप्रेक्ष्य में बिलकुल भिन्न है—तुम ही तो बताया करते थे।"

"यह सदियों पुराना समाज हमारे बदलने से नहीं बदलेगा, हमारे लिए यह फिलहाल काफी है कि परिवर्तन और प्रगति के कार्यक्रमों का विरोध न हो, साम्यवाद का ही तो यह सिद्धान्त है कि यह अनिवार्य है, अवश्यम्भावी है—विरोध न करना ही अपने आप में एक सामाजिक कार्य है। मेरा मतलब समझ रहे हो न ?"

"समझ सकता हूं कि तुम्हारा दिमाग दुधारी है।…" निरजन ने कहते-कहते अट्टहास किया ऐसा अट्टहास जिसमें स्पष्ट उपहास था, किन्तु प्रमाद गम्भीर रहे।

"मैं लन्दन से निकल रहा था कि मेरे बड़े भाई की मौत हो गई, और मौत भी अजीब हालत में हुई। वे भी इन्हीं लोगों के हाथ मारे गये जो आजकल ऊधम मचा रहे हैं। मैंने इसके बारे में तुमसे कभी न कहा था।"

निरजन अपनी ठुड्डी को कोहनी पर थामे ध्यान से सुनने लगे।

"वे शिकार पर गये हुए थे, यहीं, कोई बीस मील दूर, अच्छा घना जंगल है। शिकार करना तो उन्होंने बहुत पहले ही छोड़ दिया था, लेकिन वहां के किसानों ने कहा, भालू उनके खेत उजाड रहे थे, और उन भालुओं को मारने वाला कोई न था। उन किसानों की मदद के लिए ही वे पहुंच गये थे। और उन्होंने दो भालुओं को मार भी दिया था। वहां हमारा

शिकार के लिए बनाया गया एक छोटा-सा मकान है। रात में वे उसी मकान में मारे गये। बगल में उनकी ही बंदूक थी। कहा गया कि उन्होंने आत्म-हत्या कर ली थी। लेकिन पिता जी को शक है कि वे मार दिये गये थे। मेरा भी यह शक है। वे इन लोगों के शिकार हो गये। तब से हम अजीब पशोपेश में हैं, न यहां रह पाते हैं, न जा ही पाते हैं, तुम देख ही रहे हो, कोई न कोई घटना हो ही रही है। मेरे सामने दुविधा है कि मैं अपने परिवार का साथ दूं, या उनका जिनके सामने न कोई निश्चित योजना है न उद्देश्य ही। भटके हुए लोग हैं। हिंसा जब निरुद्देश्य होती है, तो निरर्थक होती है। यह निरर्थक हिंसा है, ऐसी हिंसा जो प्रतिहिंसा को पैदा करती है। चेतना तो क्या, एक प्रकार का धुंध पैदा करती है, जिसमें से रास्ता खोज निकालना मुश्किल है—मेरे लिए भी…"

"यह तो मैं जान सकता हूं…" निरंजन ने यह कह तो दिया था पर उनका संशय पक्का होता जा रहा था कि श्री प्रसाद अब उल्टे पांव उल्टे रास्ते चल रहे थे।

"मैं बदला हूं, बदलने के लिए बाधित हुआ हूं, यह अप्रिय निश्चय है किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में यह निश्चय ही मेरे लिए सम्भव है…।"

"हां, हां, पीढ़ियों की पृष्ठभूमि और संस्कारों से ऊपर उठना आसान नहीं है।…" निरंजन ने शिष्टतावश कह दिया, "अब शादी भी क्यों करना चाहते हो, बड़े भाई तो निस्संतान रहे, और अब वंश-वृद्धि के लिए शादी करनी ही है।" उनकी आवाज और लहजे में उलाहना था।

प्रसाद ने नीचे मुंह करके खंखारा। वे जानते थे कि उस समय निरंजन के मन में क्या विचार उठ रहे थे। पर वे लाचार थे।

"हां, तो बताओ, शादी कहां हो रही है?"

"हमारे ही रिश्तेदारों में, हम लोगों का जमींदाराना घराना था, हम औरों की भी तरह न थे, जब जमींदारी ही थी, तभी ढेर-सा कर्ज था, इतना दान दिया जाता था कि आमदनी कभी काफी पड़ी नहीं, कर्ज पर कर्ज।"

"हां।"

"नहीं मालूम, ये सब बातें तुम्हें क्यों कहनी पड़ रही हैं, शुरू ही न

होती तो अच्छा था, अब बात चल पड़ी है, तो सुन लो। जमींदारी रद्द कर दी गयी पर हमारे कर्ज तो सरकार ने नहीं लिये। घर के जेवर-जवाहरात बेचे गये। जमीन-जायदाद बेची गयी। कर्ज कम तो हुआ, पर बना रहा, और कर्ज तो वह जड है, जो कटकर भी बड़ी होती रही है, अभी हम संभल ही रहे थे कि यह सीलिंग आ गई। सौ-डेढ़ सौ एकड़ से हम क्या खायेंगे, और क्या किसी को खिलायेंगे। और फिर ऊपर से यह खानदानी मकान, जो अंदर से खोखला हो गया है। मैं यूरोप जा नहीं सकता, और यहां रहकर रोजी-रोटी के लिए कोई कारोबार भी नहीं कर सकते। यह घराना गले मे चक्की की तरह बधा रहता है। कैसे यह चलाया जाये ?"

"हां···" निरंजन भली भांति अनुमान कर सकते थे कि किस बात के लिए यह भूमिका बांधी जा रही थी—"तो लड़की देख आये ?"

"हम लड़की ही देखने गये थे कि यहां यह सब हंगामा मच गया। देखने की जरूरत ही नहीं है। जहां आदर्शों का बलिदान किया है, वहां यह भी बलिदान करना था, मैं तो बिना देखे ही शादी के लिए मान गया था।"

"ढेर-सा रुपया होगा, जमीन-जायदाद होगी···"

"हां।"

"जब अपनी न रही तो आती इस जायदाद को कैसे ठुकराया जाय ? हूं···" प्रसाद ने लम्बी सांस ली। उन्होंने सहसा अपना मुंह मोड़ लिया, शायद इस सन्देह में कि कहीं पार्वती किवाड़ के पीछे खड़ी यह सब सुन तो नहीं रही थी।

"पार्वती···पार्वती···" प्रसाद ने पुकारा। पर कहीं से कोई जवाब नहीं मिला। वह वहां न थी। प्रसाद रूमाल से अपने चेहरे का पसीना पोंछने लगे।

"हम लोग उस धातु के नहीं नहीं बने हैं, जिससे फरिश्ते और शहीद बनाये जाते है, आदर्शों पर मर मिटना खराब नहीं है, पर बेवक्त मर-खप जाना बेवकूफी है।"

"हूं।"

"मैं चाहता हूं कि तुम प्रोफेसर बनो, जनता के संगठन के लिए आदर्श ही काफी नहीं हैं, व्यक्तित्व की जरूरत होती है। कुछ बनकर जब

वलिदान करता है, उसकी पूछ होती है। अब अगर समाज के काम में लगे तो पिसोगे, और फिजूल पिसोगे। सोच-समझ लो, शुरू में सब कोई शूर होते हैं, लेकिन अंत तक हम सपने आदर्शों को नहीं निभा पायेंगे, क्योंकि आदर्शों का स्वरूप और हमारी आस्था की मात्रा बदलती जायेगी, और परिणाम किसी के लिए भी हितकारी न होगा···मैं तुम्हें दुम दवाकर जाने के लिए नहीं कहता। यह भी नहीं कहता कि तुम सामाजिक कार्य करो ही न। करो, इस तरह नहीं जिस तरह ये लोग कर रहे हैं। और भी तरीके हैं, और अच्छे तरीके हैं। अंग्रेजी की एक वात याद आ रही है—एक आदमी विरक्ति के मूड में, घर-वार छोड़ वैठा, और मठ में जा शामिल हुआ। कुछ दिन वाद न वह मठाधीश वना, न सन्त ही। वही हालत हमारी होगी, सोच लो। तुम्हारी नजर में मैं विगड़ा हुआ हो सकता हूं, मैं नहीं चाहता कि तुम अपनी ही नजर में विगड़े हुए वनो।"

"तो वही रास्ता है, जिस पर वड़े लोग चलते हैं।" निरंजन ने ताना कसा।

"हूं, तुम भी शादी कर लो, यदि शादी से कुछ जिम्मेवारियां सिर पर आ पड़ती हैं, तो कुछ जिम्मेवारियां खतम ही नहीं होतीं, और नये काम करने के लिए, सुभीताएं, मदद, पूंजी भी मिल जाती हैं।"

"हूं, तुमने तो अपना रास्ता तय कर लिया, अव मुझे भी तय करना होगा।" निरंजन ने वाहर झांका, उनको लग रहा था कि शायद पार्वती वहां खड़ी उनकी वातचीत तो नहीं सुन रही थी।

"अच्छा, आज मैं फिर चलूं—तुम पर कितनी ही फिक्रें हैं, मुझ पर भी हैं, पर मैं यहां आ सका, और दो दिन तुम्हारे साथ विता सका, यही काफी है। ये क्षण जिन्दगी में याद रहेंगे।"

"अरे वाह, तुम तो वड़े फार्मल हो रहे हो। ठहरो भी, जाओगे कहां?"

"यहां से जाना ही है।"

"मैं तुम्हें खुद छोड़ने जाऊंगा, एक वात वताना भूल ही गया, हम सव के नाम पुलिस वालों के पास हैं, हमारे लन्दन से सम्वन्धों के वारे में ये लोग वेखवर नहीं हैं। तुम्हारे आदर्शों के विषय में भी ये जानते हैं।"

वाने में व्यस्त थे। घूमने-फिरने भी नहीं जा सकते थे। न लिख-पढ़ ही पा रहे थे। झक मारकर वे फिर प्रसाद के पास गये। वे अपने कमरे में थे, पार्वती भी वहीं थी। शायद उसका कमरा भी उनके कमरे से सटा हुआ था। पार्वती एक कुर्सी पर बैठी थी और आरामकुर्सी पर प्रसाद, दोनों शायद बतिया रहे थे। निरंजन के कमरे में आते ही पार्वती लज्जावश पास के कमरे में चली गई।

"आओ, भाई, यानी तुम उतने ढीठ नहीं हो, जितना कि मैं समझता था। तुम में भी कभी-कभी अक्लमन्दी आ जाती है।" प्रसाद ने अट्टहास किया और उनको पार्वती द्वारा खाली की गई कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। निरंजन भी हंस दिये।

"क्या खबर है ?"

"किसी खबर का न होना ही अच्छी खबर समझो। आस-पास के गांव में धर-पकड़ चालू है, अच्छा है, तुम जा नहीं रहे हो।"

"लेकिन खाली बैठ भी तो नहीं पाता हूं। कब तक पढ़ूं, और क्या पढ़ूं ?"

"तो संगीत सुनो, रेडियो है।"

"संगीत सुनने का भी मन नहीं लगता है।"

"जमींदारी होती तो महफिल लगा देता, और तुम्हारे आनन्द का प्रबन्ध करता, यह जगह तो ऐसी है कि साधु-सन्त भी अप्सराओं में फंस जाते हैं।" प्रसाद ने कहा। निरंजन को न मालूम क्यों झट सन्देह हुआ कि कहीं पार्वती तो उनकी अप्सरा नहीं है, अन्तर है भी तो उसका क्या कसूर है ? उसका आकर्षण ही कुछ ऐसा है कि सन्त भी अगर पतंगे हो जाते हैं, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

"मैं लिखना चाहता हूं, कहीं कोई टाइप राइटर मिल सकेगा ?"

"लिखो, जरूर लिखो, टाइप राइटर है, वही जो मेरे साथ लन्दन में था। कागज-वागज सब है, पार्वती बहुत अच्छा टाइप करती है, चाहो तो डिक्टेट कर दो, वह शॉर्टहैण्ड भी जानती है। तुम्हारे कमरे के बगल का कमरा खाली है, वहीं लिखने की मेज वगैरह है, आओ, मैं दिखा दूं।" वे तुरन्त उठे और कमरे से बाहर निकलते-निकलते उन्होंने पार्वती को भी

आवाज दी। वह भी साथ चली आयी। "खाली बैठने से तो अच्छा यही है कि तुम इनकी मदद करो, कमरा खुलवा दो।" यह कहकर प्रसाद अपने कमरे में चले गये।

कमरा खोला गया, खिड़कियां खोली गईं। वे दोनों दो अलग-अलग कुर्सियों पर बैठ गये।

"तो आप स्टेनोग्राफी जानती हैं?"

"जी हां, सीखा तो है, लेकिन अधिक अभ्यास नहीं है।"

"पर सीखा ही क्यों था, वो लड़कियां सीखती हैं, जिनके पास रोजी का कोई रास्ता नहीं होता।"

'वह समस्या तो हर स्त्री के सामने आ सकती है।" पार्वती ने झिझकते हुए कहा।

"हूं," निरंजन निरुत्तर हो गये थे। "आपने तो वक्त काटने के लिए सीखा होगा।"

"हां, यह भी बात थी, वक्त तो मेरा कट ही जाता है।" वह और मुस्करा दी।

"तो आप कॉलेज भी गई होंगी?"

"हां, गई थी, ग्रेजुएट हूं, प्राइवेट तौर पर एम० ए० कर रही हूं।... आप कुछ डिक्टेट करवाना चाहते थे।"

"हां, इसलिए कि मेरे साथ कोई बात करने वाला न था, और मन ऊब रहा था।"

पार्वती चुप रही।

परिचय इतना बढ़ गया था कि निरंजन जानना चाहते थे कि आखिर पार्वती कौन थी इस घर में। अब यह जान उनका आश्चर्य बढ़ गया था कि जिसे पहले-पहल उन्होंने घर की दासी समझ लिया था, वह ग्रेजुएट थी, और घर के मुखिया की बगल में कुर्सी पर बैठती थी। और कुंवर साहब के सामने बैठकर बतियाती थी।

"प्रसाद आपके क्या होते हैं?"

"भाई।"

"भाई हैं, तो आप क्यों घंटी बजाने पर, नौकरानी की तरह मेरी

देखभाल करने आयीं ?"

"क्योंकि आप हमारे घर में मेहमान हैं।"

"मगर घंटी।"

"आप मेरा नाम तो पहले जानते नहीं थे, जानते भी होते तो इतना परिचय नहीं कि आप मुझे नाम से पुकारते, इसलिए घंटी···" कहती-कहती पार्वती मुस्करायी।

"क्यों ? इस घर में नौकर-चाकर नहीं हैं ?"

"होने को तो अब भी दो-चार हैं, पर भाई के अतिथियों की देखभाल मैं ही करती हूं।"

"हूं," सिर ऊपर-नीचे करते हुए निरंजन को न सूझ रहा था कि कैसे बात आगे बढ़ाई जाये। दोनों चुप थे।

"आपको गाने-बाने का भी शौक है ?"

"शौक तो है, पर अक्सर गाती नहीं हूं।"

"ताकि लोगों का मन बहलाव कहीं न हो जाये ?" निरंजन ने हंसते हुए पूछा।

"मेरा मन बहलाव नहीं होता, गाती हूं, मन का आनन्द नहीं, कष्ट बाहर आता है।"

"और दूसरों का कष्ट निवारण होता है···"

"अनायास हो तो कोई बात नहीं, पर···"

"हां, मैं आपका इशारा समझता हूं, मैं आपको गाने के लिए नहीं कहूंगा···" वे फिर हंसे।

लेकिन पार्वती गम्भीर बैठी रही। निरंजन उठे, और पीठ पीछे हाथ बांधकर इस तरह चलने लगे, जैसे दिमाग को कुछ विचार उगलने के लिए उकसा रहे हों।

"आप कुछ डिक्टेट करवा रहे हैं न ?"

"तो लिखिए—आधुनिकता के सौंदर्य में, भारत की स्थिति बड़ी विचित्र और दुविधापूर्ण है, यहां उद्योग युग तब आया है जब कि पश्चिम में, इसका रूप और क्षेत्र ही बदल गये हैं, प्रजातन्त्र तब आया जब कि अन्यत्र प्रजातन्त्र कुछ-कुछ क्षीण हो रहा है, इन दोनों के परिणाम और

प्रभाव कुछ-कुछ वाह्य हैं, ऐतिहासिक प्रक्रिया के स्वाभाविक परिणाम सम्भव नहीं हैं। इसलिए समय और सन्दर्भ की दृष्टि से इस देश की समस्याएँ, कुछ अंशों में उनके समान होते हुए भी, कई अंशों में असमान हैं। चेतना के वे साधन और माध्यम, जो उद्योग युग के प्रारम्भ में, और प्रजातन्त्र के आरम्भ में कारगर हुए थे, अब कारगर होंगे, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर कौन से साधन उपयुक्त होंगे?" निरंजन यकायक रुके, "पार्वती, तुम ही बताओ कि कौन से साधन सफल हो सकते हैं?"

"मैं तो आपका डिक्टेशन ले रही हूं।"

"मैं उलझन में हूं, और यहां आकर तो यह उलझन और भी उलझ गई है। हिन्दुस्तान से जब हम बाहर विदेशों में होते हैं, तो इसके बारे में एक तरह की विचारधारा होती है, और जब हिन्दुस्तान में होते हैं, दूसरी कुछ और विचारधारा बन जाती है।"

"जी।"

"प्रसाद के विचार तो बदले ही हैं, और इस तरह बदल रहे हैं कि ये ठीक उन बातों के विरोधी हैं, जिनकी कभी वे पैरवी किया करते थे।"

"लोग आदर्श और यथार्थ की बात करते हैं, पर ये बातें शायद तब तक उड़ती-उड़ती-सी हैं, जब तक उनमें स्वार्थ की वास्तविकता नहीं आ जाती, व्यक्ति के स्वार्थ की, वर्ग के स्वार्थ की—स्वार्थ की बात उठती है, जब आदमी स्वयं अपने परिवेश में आ जाता है, अब आप उनकी तरह अपने ही परिवेश में हैं।"

"वे क्या तुमसे इन विषयों पर बातें किया करते हैं?"

"जी, किया करते थे, लेकिन आजकल तो या तो फिल्मों के बारे में बातें करते हैं, नहीं तो सीलिंग के बारे में, नहीं तो इन उपद्रवों के बारे में, जो आये दिन इस प्रान्त में हो रहे हैं।"

"अच्छा, मैं क्या डिक्टेट करवाऊं, मेरी वास्तविकता का चित्र ही बदल रहा है, मैं कोहरे में हूं।" निरंजन उठे।

पार्वती भी उठी।

"मन नहीं लग रहा है, आप हमें अपना सारा महल ही दिखा

दीजिये।"

"आइये, अब तो सिर्फ ईंट-पत्थर ही रह गये हैं। देखिये···"

दोनों मुस्कराते-मुस्कराते कमरे से बाहर निकले। निरंजन सहसा, पार्वती के साथ एक विचित्र भावात्मक साम्य का अनुभव कर रहे थे।

॥ आठ ॥

रात में निरंजन सोये तो सपने भी पार्वती के बारे में ही आये। उठे तो उसकी इन्तजार करने लगे। कब आती है, कब चाय लाती है, कब पलकें उठती हैं, और कब झुकती हैं, और कब दो-चार बातें होती हैं।

दो-तीन दिनों में, न मालूम उसने उन पर क्या जादू कर दिया था। कल की बातचीत से तो वे बहुत प्रभावित भी हुए थे। ज्ञान पाना उतना कठिन नहीं, पर ज्ञान को विनय में आवृत शालीन ही कर सकते हैं। जिनको वह नौकरानी समझे हुए थे, वह पढ़ी-लिखी, खानदानी लड़की निकली।

पांच-छः दिन कहीं एकान्त में रहना पड़ जाये, और ऐसे एकान्त में जहां सुख-सुविधा की सब चीजें मौजूद हों, वहां भगवान याद नहीं आते, मन्मथ आते हैं—इस तरह की वैलासिक चैन में मन बेचैन हो उठता है। हाथ खाली, दिमाग खाली हो, तो ख्वाबों का ज्वार आता है।

"क्या मैं स्त्रियों से दूर रहूं? क्यों दूर रहा जाय? एकाग्रता के लिए। क्यों स्त्रियों को विलाप की वस्तु ही समझा जाय, तभी तो एकाग्रता पाने के लिए उनसे भागा जाता है, पर वे विलास वस्तु ही नहीं हैं। उनको यह मानना पुरुष की अनुचित अहम्मन्यता है, कामलोलुपता है। मेरे विचारों में सब समान हैं। पढ़ी-लिखी स्त्रियां केवल विलास की वस्तु नहीं, वे जीवन-संगिनी बनती हैं। विश्वास और विचार एक हों, तो दो अलग न रह कर एक हो जाते हैं, और जीवन के संघर्ष में सहर्ष हिस्सा बांटते हैं। पार्वती

कुछ ऐसी ही है ? प्रसाद तो बिक गये, क्या पार्वती भी खरीदी जायेगी ? बेची जायेगी ? स्त्रियों को भाव-सौदे से ऊपर उठाकर, उनका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार करना ही अपने आप मे एक सुधार है। मैं जो भारत के जमे जमाये, संकुचित समाज में सुधार लाना चाहता हूं, क्यों न स्वयं सुधार करूं ?

पिता जी मेरी शादी करना चाहते हैं, या मेरी शादी से इतना रुपया कमाना चाहते हैं कि किसी को खरीद कर बहिन को सौंप दें। शादी करनी ही हो, तो मैं इतना नालायक नहीं हूं कि एक जीवन-संगिनी भी न खोज पाऊं ? पार्वती ? हां पार्वती में क्या कमी है, लगता है, पार्वती का जादू, सिर पर से मन को बोल रहा था, और मन सिर को खटखटा रहा था।

, निरंजन स्त्रियों के सम्पर्क में रहे थे—विदेशी, पर न मालूम क्यों उनके सामने अपने को कुछ-कुछ न्यून मानते रहे थे, शायद उनमें कहीं दबी दासता की प्रवृत्ति अपने को उनके समान न मानने देती थी। न उनको देखकर उनमें वह प्रक्रिया ही हुई थी जो पार्वती को देख कर हुई थी। यहां तक विदेशी वेश्याओं के पास जाकर भी उनको अपनी कमजोरी का ही एहसास हुआ था।

पार्वती ? क्या उम्र होगी ? ग्रेजुएट है, इक्कीस-बाईस की तो होगी ही, मेल खराब नहीं है। पर शादी ? और अभी जब कि सामाजिक कार्य की भूमिका भी ठीक तरह नहीं बनी है। पर क्यों सोचती हूं, कि पार्वती मेरे काम में बाधा होगी···नहीं होगी।

हिन्दुस्तान मे जन-उत्तेजन का कार्य प्रचार द्वारा ही हुआ है। यानी भाषाओं द्वारा, अब भी होता है। हमारे समाज मे इस प्रकार ही होता रहेगा, और लेखन द्वारा। मैं लिखना ही तो चाहता हूं एक पढ़ी-लिखी तरुण सुशील स्त्री, जो स्टेनोग्राफी भी जानती है, मददगार ही होगी, पर क्या पार्वती मानेगी ? जानती है कि मैं विदेशों मे रहा हूं, और विदेश में स्त्रियों के सामने पुरुष ही विवाह का प्रस्ताव कर [illegible] ता मैं भी [illegible] ? उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी ?

मैं भले ही विदेश में पढ़ा हूं, पर मेरे पा

सब स्वार्थी है / :

वह एक ऐसे घराने की है, जिसकी सारी शक्ति इसी में है कि उनके पास जमीन-जायदाद है। प्रसाद के पिता जी ने पूछा था—कितनी जमीन सीलिंग के कारण गई है। प्रसाद की प्रत्युत्पन्नमति के कारण, मैं एक दुविधाजनक स्थिति से बच गया था—लेकिन उनका दृष्टिकोण तो इससे जाना ही जा सकता है। अगर पार्वती राजी हो गई तो ये सब बातें उठती ही नहीं हैं। क्या पार्वती को राजी किया जाय? क्या पार्वती मुझे चाहती है?—हां, नहीं तो वह क्यों झेंपती? हमारे यहां स्त्रियां झेंपकर ही तो चुपचाप अपनी अनुमति जताती हैं।

निरंजन इस तरह ख्वाबी पतंग उड़ा रहे थे। चाय का समय हो गया था, पर चाय नहीं आयी थी। घंटी बजाने की सोची—पार्वती कोई नौकरानी तो है नहीं कि घंटी बजा कर बुलाया जाय। क्या नाम लेकर बुलाऊं? नहीं अभी इतना परिचय नहीं हुआ है।...शायद इसी तरह परिचय हो। अगर वह बुरा मान गई तो...निरंजन मन ही मन मुस्कराने लगे।

वे बाहर गये। बरामदे में कुछ देर देखा। पार्वती कहीं न थी। उनको किसी का इन्तजार करते देख एक और स्त्री आयी। वेश-भूषा, हाव-भाव व्यवहार से ही वह नौकरानी लगती थी पर फिर अनुमान गलत न हो जाये, निरंजन उसकी ओर देखते रहे।

"चाय लाऊं क्या हुजूर?" उस स्त्री ने स्वयं दासियों के लहजे में पूछा।

"हां।"

निरंजन, अपने कमरे में चले आये। वे ही, जो पिछले कुछ क्षण पूर्व सुनहले सपने देख रहे थे, जाने क्या-क्या सोचकर, विह्वल होने लगे। वे अपने से कहते लगते थे, "ये लक्षण अच्छे नहीं हैं। स्त्रियों पर यों मुग्ध होकर बहुतों ने अपने सिर तोड़े हैं। न अधिक जान, न पहचान, पर लगाव ऐसा जैसे पार्वती के बिना रह न पा रहे हों।

नौकरानी आयी तो निरंजन ने पूछा, "आज पार्वती क्यों नहीं आयी, तबीयत ठीक है न?"

"मालकिन के साथ मन्दिर गई हैं, मुझे यह काम सौंप गई थीं। आपको

ज्यादह इन्तजार तो नहीं करनी पड़ी ?"

"नहीं-नहीं, तुम यहां काम करती हो ?"

"जी।"

निरंजन ने पार्वती के बारे में और जानना चाहा, पर यह सोचा कि कहीं घर की लड़की के बारे में किसी अनजानी नौकरानी से पूछताछ की जाती है ? कहीं इसने पार्वती से कह दिया तो ? उन्होंने पार्वती के बारे में अधिक उत्साह या उत्सुकता दिखाना अनुचित समझा।

"क्या अखबार आया है ?"

"जी नहीं, यहां शाम को अखबार आता है।"

"प्रसाद जी हैं क्या ?"

"वे और बड़े बाबू, काफी सवेरे ही कहीं चले गये थे।"

"हूं।"

"आप तब उठे नहीं थे।"

"कहां गये हैं ?"

"जी, मुझे नहीं मालूम।"

न मालूम निरंजन क्या-क्या अनुमान करते, यदि ड्योढ़ी में से कार आते न देखते। पार्वती उसमें थी, और उनको लगा कि उनकी खिड़की की ओर ही देख रही थी। प्रसाद की मां भी थीं। वे पिछली सीट के कोने में बड़ी गम्भीर मुद्रा में बैठी थीं। ड्राइवर की बगल में और व्यक्ति था, शायद नौकर। निरंजन को ढाढ़स हुआ।

पार्वती कार से उतरते ही उनके कमरे में आयी।

"आपकी चाय वगैरह हुई कि नहीं ? पार्वती ने बड़ी उत्कंठापूर्वक पूछा मानो उसकी अनुपस्थिति में उनको असुविधा हुई हो।

"हो गई, मगर आप कहां गई थीं ?"

"मन्दिर, मां के साथ गई थी।"

"आप भी मन्दिर जाती हैं ?"

"जाती हूं, मां के साथ—साथ देना शायद ज्यादह मुख्य है।"

'यानी आपका धर्म-कर्म में विश्वास नहीं है।"

"रूढ़ियों में नहीं।"

"आपने कुछ खाया कि नहीं ?"

"नहीं, यहीं मंगवा लीजिये न, साथ खायेंगे।"

"अच्छा, जैसा आप चाहें।" पार्वती ने घंटी नहीं बजाई।

वह स्वयं बरामदे में गई, वहां से रसोई में, और देखते-देखते ट्रे में दो-चार तश्तरियों में प्रातः राश ले आयी।"

"अरे, आप ही ले आयीं—किसी नौकरानी से जो कह देतीं।"

"मैं अपना काम स्वयं करती हूं। कहते हैं, तरक्कीपसन्द, साम्यवादी व्यक्ति नौकर पर निर्भर नहीं रहते।" पार्वती ने मुस्कराते हुए कहा। निरंजन उसका व्यंग्य समझ कर कुछ लज्जित हुए।

"प्रसाद कहां है ?"

"वे और बड़े बाबू, उसी जगह गये हैं, जहां कुंवर मारे गये थे।

"क्यों ?"

"सुना जाता है कि कोई नक्सलाइट मारा गया है। पुलिस और उनमें कुछ मुठभेड़ हुई, और वे पुलिस की गोली के शिकार हो गये। वे इसी गांव के थे और उन्हीं की वजह से यहां आये दिन घटनायें हो रही थीं।"

"हूं।"

"यह देखने गये हैं कि क्या वह इसी गांव का आदमी है। पुलिस वाले अपनी जीप में सवेरा होने से पहले ले गये थे। जल्द ही आ जायेंगे।"

"हूं।"

"तो आपका यहां से न जाना अच्छा ही हुआ न ?"

"हां, एक तरह से···" निरंजन ठीक-ठीक उसका आशय समझ नहीं पा रहे थे।

"इसी गांव का आदमी, और यहीं के जमींदार के विरुद्ध ?"

"विरुद्ध हो जाना तो बहुत स्वाभाविक बात है।"

"मगर जमींदार साहब वही तो हैं, जो पहले थे। वे अब भी यहां के सबसे धनी और साधन सम्पन्न व्यक्ति हैं, दूर-दूर तक उनका दबदबा है, सब उनको जानते-पहचानते हैं।"

"यह ठीक है, पर लोगों में अब भय नहीं रहा। ये सब बातें तभी तक हैं, जब तक लोगों में भय होता है। भय ही उनकी सम्पन्नता का सम्मान

करता है। भय उसको बड़ा मानने के लिए मजबूर करता है। अब भय नहीं है, इसलिए सारी परिस्थिति ही बदल गई है।"

'हूं, एक जमाना था जब हवेली में हिजड़ा भी रहता तो वह गरीब के लिए हौवा था। और अब शेर भी बिल्ली सा लगता है।" निरंजन को आश्चर्य हो रहा था कि महल में रहने वाली स्त्री जनप्रवृत्तियों का इस प्रकार ठीक विश्लेषण कर रही है। बात दार्शनिक नहीं है। उचित निरीक्षण की है। बहुत प्रखर बुद्धि की मालूम होती है। न मालूम क्यों उनमें यकायक उसी प्रकार की न्यूनता का कम्पन हुआ, जो विदेशी महिलाओं की संग में उनको प्रायः हो जाता था। वे सम्भले।

"आपके भाई कब आयेंगे?"

'आते ही होंगे—आज तो आपको कुछ डिक्टेट नहीं करना है?"

"देखिये, प्रसाद को आने दीजिये। अब जब कि वह आदमी मार दिया गया है, जिसकी वजह से यह सारी गड़बड़ी हो रही थी, अच्छा है, मैं यहां से चला ही जाऊं?"

"अभी तो आप आये ही हैं, यहां के हालात देखिये, सुनिये—तब लिखिये।"

"नहीं तो बड़ी-बड़ी बातें भी आसमानी लगती हैं। यही न···" निरंजन ने उन्हीं के लहजे में उनका वाक्य पूरा कर दिया।

पार्वती हंस दी।

"आप चाहती हैं कि मैं यहां रहूं।"

"मैं चाहती हूं कि आप यहां की परिस्थितियों का अध्ययन करू···"

"जरूर, अगर आप हमें ले जायें, और यहां के हालात दिखायें।"

"मैं, एक लड़की···खैर···पार्वती सकुचाई। कोई ठीक उत्तर न दिया। और निरंजन के जिस्म में गरमी-सी आ रही थी।

"माता जी ने बुलाया है, वे अकेले रह नहीं पातीं।" पार्वती मुस्कराती-मुस्कराती उठकर चली गयी। और निरंजन उसकी ओर निहारते रहे, जैसे वह अपने साथ उनकी सुध-बुध ले जा रही हो।

॥ नौ ॥

दुपहर हो गई, पर न प्रसाद आये, न उनके पिता जी ही। न वहां कोई जानना ही चाहता था कि वे क्यों न आये थे। पार्वती आयी।

"आप अब हमें घूमाने ले चलेंगी ?" निरंजन ने पूछा।

पार्वती मुस्करायी, "ड्राइवर नहीं है।"

"ड्राइवर की क्या जरूरत है ? पैदल चलेंगे। रईस घर की लड़कियां शायद पैदल नहीं चलतीं।"

"नहीं, गरीब घर की लड़कियां भी कड़ी दुपहरी में बाहर नहीं निकलती हैं।"

निरंजन मुस्करा दिये। आपके पास हर प्रश्न का उत्तर है, और वह भी टका-सा।

"तो खाना ले आऊं ?" पार्वती ने पूछा।

"आप कहती हैं तो ले ही लेंगे।" थोड़ी देर में पार्वती एक नौकरानी के हाथ बड़ी ट्रे में खाना रखवाकर कमरे में आयी। मेज पर खाना रख कर नौकरानी चली गई।

"इतना सारा खाना मैं अकेला खाऊं ?"

"आप उतना ही खाइये जितना आपको खाना है।"

"बाकी ?"

"जूठा थोड़ा ही होगा, खाने वाले अभी हैं।"

"कहते हैं, पैसे की तंगी है, आय के रास्ते बन्द हैं, यह तकलीफ है, वह तकलीफ है, मगर खाना देखें तो कहीं कोई तंगी नहीं दिखाई देती।"

"आप तो अब देख रहे हैं, पहले और भी जाने कितनी चीजें बनती थीं। अब बहुत कम हो गई हैं···"

"फिर···भी···"

"आदतें जल्दी नहीं जातीं, बरसों की रईसी के जाते-जाते भी देर लगती है। बहुत बदल गये हैं हम।"

"यह खाना खाते समय लगता है, कि हम कोई कसूर कर रहे हैं। कितने

ही हैं, जिनको रूखा-सूखा चावल नसीब नहीं है।"

'परोसा हुआ खाना न खाना भी शायद कसूर हो सकता है।"

पार्वती ने कहा।

"लेकिन सोचता हूं कि इस तरह के हिंसाकाण्डों में क्या सबको खाना मिल सकेगा? आपकी क्या राय है?"

"मेरी? बड़े-बड़े लोग इस बारे में कोहरे में हैं, मैं तो अंधेरे में हूं ही।"

"सारी व्यवस्था बदलनी चाहिये, क्या फुटकर हिंसा की घटनाओं से यह व्यवस्था बदलेगी?"

पार्वती चुप रही।

"व्यवस्था तो नहीं बदलेगी, वातावरण बदलेगा और वह भी धीमे-धीमे। दमन से दो बातें हो सकती हैं। एकतो हिंसा औरबढ़ सकती है,और कम भी। यह सब इस बात पर निर्भर है कि हिंसा कितनी संगठित है, और कौन कर रहा है तथा शासक कौन है? फिर इन घटनाओं का समय क्या है? उद्देश्य क्या है? क्या किसी आदर्श के लिए है, या एक प्रकार का भटका-भटका एड्वंचिरिज्म है?"

"बहुत-सी बातें सोचने की हैं, आप तो सोचते हैं···" पार्वती कुछ इशारा करना चाहती थी, पर उसने किया नहीं।

"मेरे जो भी विचार हैं, वे सब प्रसाद की देन हैं।"

"वे बहुत सोचते हैं, इतना सोचते हैं कि उनके विचार पल-पल में इन्द्रधनुष होते रहते हैं। मुझे नहीं मालूम, शायद मुझे यह सब नहीं कहना चाहिये, आप अपने मित्र को मुझसे कहीं अधिक जानते हैं।···" पार्वती ने कहा।

"जितना हमने सोचा था वे उससे कहीं अधिक तेज हैं।" निरंजन ने कहा। वे पार्वती की आंखों में नजर गाड़ कर देखने लगे, और पार्वती की आंखें नीचे गड़ी हुई थीं।

कार की ध्वनि सुनाई दी। पार्वती ने खिड़की में देखा। उसके पीछे निरंजन भी बाहर ताक रहे थे। देख बाहर रहे थे, पर सोच रहे थे कि पार्वती झट मुड़े और उनका उससे स्पर्श हो। वे उसे स्पर्श करना चाहते

थे। लेकिन करने का साहस नहीं बटोर पाते थे ।

निरंजन खा चुके थे। पार्वती कमरे से बाहर गई। वे भी हाथ धोकर नीचे पोर्टिको में गये। उनके पहुंचते-पहुंचते, प्रसाद बराण्डे के बगल के जीने के पास आ गये थे। दोनों मिले।

"भाई, देर हो गई, खाना हो गया है न ?"

"हां-हां।"

"सब ठीक है न ?"

"हां-हां, ये मरते भी हैं, तो हम पर भी बोझ पड़ता है।"

निरंजन उनके पीछे जा रहे थे, और पार्वती आगे-आगे।

"तुम अभी हो न, मैं जरा नहा-धो आऊं ?" प्रसाद कहते-कहते अपने कमरे में चले गये।

प्रसाद का खाना वगैरह खतम होने तक, निरंजन अपने कमरे में सुस्ता भी चुके थे। प्रसाद उनके कमरे में आये, उनके साथ पार्वती थी।

"मैं गांव देख आना चाहता हूं, पार्वती चाहती है कि गांव देख लेना अच्छा है।"

"देख आइये, कार है।"

"पार्वती साथ आयेगी।"

"पार्वती, क्यों ?"

"हां।"

"अच्छा तो जाओ, हम तुम्हारी इन्तजार करेंगे। देखो, देरी न करना, पिता जी शायद जल्दी ही बाहर जायें।"

प्रसाद, पार्वती को भेजने में संकोच कर रहे थे। गांव में खलबली मची हुई थी, उन्हीं के परिवार पर तरह-तरह के हमले किये जा रहे थे। प्रसाद का चिन्तित न होना स्वाभाविक होता।

पार्वती और निरंजन एक साथ कार की पिछली सीट पर बैठे थे। ड्योढ़ी में से कार गई तो वहां पुलिस वाले नहीं थे। आगे इमली के पेड़ के नीचे जीपें थीं, और उनमें कई पुलिस वाले थे। वायरलेस भी था। उनकी कार, जो वहां से गुजरी, तो पुलिस ने उनको एक क्षण देखा, फिर

बूट खटकाकर सलाम ठोका। निरंजन मन ही मन मुस्कराये, और पार्वती गम्भीर हो आगे देख रही थी।

वह कस्बा या बड़ा गांव, कार के लिए काफी बड़ा न था। एक लम्बा-सा बाजार, उसके अन्त में एक छोटा-सा मंदिर था, उसके सामने एक बड़ा आहाता, किले-सरीखा, उसमें एक पुराना मकान था, उसी में कस्बे का हाई स्कूल था। यह बिल्डिंग कभी प्रसाद के पुरखों की थी। जब लोग उस घर में इस तरह मरने लगे, जैसे कोई प्लेग आया हो, तो ब्राह्मणों ने बताया कि यह सब मकान की वजह से था, प्रायश्चित्त किया गया, और भी कितने संस्कार किये गये। पर जल्द ही उन्होंने वह मकान खाली कर दिया, और अब जिस मकान में वे रह रहे, हैं उसमें चले आये।

"अब तो जमींदारी ही रद्द हो गई है, तब जमींदारी थी। एक मकान खराब निकला तो दूसरा बनवा लिया, अब क्या करेंगे?" निरंजन ने जानना चाहा।

"शायद इसे भी खाली कर दें, परंपरा है न?" पार्वती ने इस तरह बेझिझक कहा कि निरंजन को ताज्जुब हुआ। 'खानदानी धनियों में अपनी सम्पन्नता के बारे में अजीब-सी अनासक्ति होती हैं'— निरंजन ने सोचा।

किले से लगा एक शेड था, उसमें कस्बे का सिनेमा हॉल था। यह भी प्रसाद के घराने का था। कहीं कोई खास बड़ी दुकान नहीं, कोई कारखाना नहीं, कोई काम-धन्धा नहीं। सुस्त-सा, सोता-सा कस्बा। सारा गाव एक ऐसे ठूंठ की तरह था जिस पर गिद्ध बैठे हुए हों।

मन्दिर के पास ही कस्बे का श्मशान था और वहां भी धीमे-धीमे भीड़ जमा हो रही थी। सभी नंग-धड़ंग लोग। गरीब, दयी मारे लोग।

"कौन मर गया है?"

"वही जिसे पुलिस ने मारा था। उसी के दहन-संस्कार की तैयारियां हो रही है।"

"तो पुलिस ने इतनी जल्दी शव दे दिया?"

"हां, बाबू जी जो गये थे। वे इसी काम पर तो ले जाये गए थे।"

"अब बाबू जी के खर्च पर ही उनका दहन होगा।"

"हां, यही तो आये दिन की बात है, इस गांव के वे ही तो खुद

थे। लेकिन करने का साहस नहीं बटोर पाते थे ।

निरंजन खा चुके थे। पार्वती कमरे से बाहर गई। वे भी हाथ धोकर नीचे पोर्टिको में गये। उनके पहुंचते-पहुंचते, प्रसाद बराण्डे के बगल के जीने के पास आ गये थे। दोनों मिले।

"भाई, देर हो गई, खाना हो गया है न?"

"हां-हां।"

"सब ठीक है न?"

"हां-हां, ये मरते भी हैं, तो हम पर भी बोझ पड़ता है।"

निरंजन उनके पीछे जा रहे थे, और पार्वती आगे-आगे।

"तुम अभी हो न, मैं जरा नहा-धो आऊं?" प्रसाद कहते-कहते अपने कमरे में चले गये।

प्रसाद का खाना वगैरह खतम होने तक, निरंजन अपने कमरे में सुस्ता भी चुके थे। प्रसाद उनके कमरे में आये, उनके साथ पार्वती थी।

"मैं गांव देख आना चाहता हूं, पार्वती चाहती है कि गांव देख लेना अच्छा है।"

"देख आइये, कार है।"

"पार्वती साथ आयेगी।"

"पार्वती, क्यों?"

"हां।"

"अच्छा तो जाओ, हम तुम्हारी इन्तजार करेंगे। देखो, देरी न करना; पिता जी शायद जल्दी ही बाहर जायें।"

प्रसाद, पार्वती को भेजने में संकोच कर रहे थे। गांव में खलबली मची हुई थी, उन्हीं के परिवार पर तरह-तरह के हमले किये जा रहे थे। प्रसाद का चिन्तित न होना स्वाभाविक होता।

पार्वती और निरंजन एक साथ कार की पिछली सीट पर बैठे थे। ड्योढ़ी में से कार गई तो वहां पुलिस वाले नहीं थे। आगे इमली के पेड़ के नीचे जीपें थीं, और उनमें कई पुलिस वाले थे। वायरलेस भी था। उनकी कार, जो वहां से गुजरी, तो पुलिस ने उनको एक क्षण देखा, फिर

बूट खटकाकर सलाम ठोका। निरंजन मन ही मन मुस्कराये, और पार्वती गम्भीर हो आगे देख रही थी।

वह कस्बा या बड़ा गांव, कार के लिए काफी बड़ा न था। एक लम्बा-सा बाजार, उसके अन्त में एक छोटा-सा मंदिर था, उसके सामने एक बड़ा आहाता, किले-सरीखा, उसमें एक पुराना मकान था, उसी में कस्बे का हाई स्कूल था। यह बिल्डिंग कभी प्रसाद के पुरखों की थी। जब लोग उस घर में इस तरह मरने लगे, जैसे कोई प्लेग आया हो, तो ब्राह्मणों ने बताया कि यह सब मकान की वजह से था, प्रायश्चित्त किया गया, और भी कितने संस्कार किये गये। पर जल्द ही उन्होंने वह मकान खाली कर दिया, और अब जिस मकान में वे रह रहे, हैं उसमें चले आये।

"अब तो जमीदारी ही रद्द हो गई है, तब जमीदारी थी। एक मकान खराब निकला तो दूसरा बनवा लिया, अब क्या करेंगे?" निरंजन ने जानना चाहा।

"शायद इसे भी खाली कर दें, परपरा है न?" पार्वती ने इस तरह बेझिझक कहा कि निरंजन को ताज्जुब हुआ। 'खानदानी धनियों में अपनी सम्पन्नता के बारे में अजीब-सी अनासक्ति होती है'—निरंजन ने सोचा।

किले से लगा एक शेड था, उसमें कस्बे का सिनेमा हॉल था। यह भी प्रसाद के घराने का था। कहीं कोई खास बड़ी दुकान नहीं, कोई कारखाना नहीं, कोई काम-धन्धा नहीं। सुस्त-सा, सोता-सा कस्बा। सारा गाव एक ऐसे ठूठ की तरह था जिस पर गिद्ध बैठे हुए हो।

मन्दिर के पास ही कस्बे का श्मशान था और वहा भी धीमे-धीमे भीड़ जमा हो रही थी। सभी नंग-धड़ग लोग। गरीब, दयी मारे लोग।

"कौन मर गया है?"

"वही जिसे पुलिस ने मारा था। उसी के दहन-सस्कार की तैयारिया हो रही है।"

"तो पुलिस ने इतनी जल्दी शव दे दिया?"

"हा, बाबू जी जो गये थे। वे इसी काम पर तो ले आये गए थे।"

"अब बाबू जी के खर्च पर ही उनका दहन होगा।"

"हा, यही तो आये दिन की बात है, इस गांव के वे ही तो खुद

म्युनिस्पलिटी हैं···" दोनों ने ठहाका मारकर अट्टहास किया।

"वह था कौन ?"

"गांव के कुम्हार का लड़का, उसका पिता गुजर गया था, अभी वह जिन्दा था कि इस लड़के ने यहां के स्कूल में ही स्कूल फाइनल किया। नौकरी के लिए-मारा फिरा। कहीं कोई नौकरी न मिली। पढ़-लिख क्या गया कि वह अपने पुश्तैनी काम के लायक भी न रहा। फिर आजकल लोग या तो प्लास्टिक की चीजें खरीदते हैं नहीं तो अल्म्यूनियम की। गांवों में भी लोग कुम्हार की बनी चीजें नहीं खरीदते। आखिर कब तक भूखा मरता बिचारा। इन लोगों में शामिल हो गया।"

"हूं।"

"और आज उस बिचारे की छोटी-सी जिन्दगी खतम हो गई। उसके एक बहिन है।"

"बहिन ?" निरंजन को न मालूम क्यों अपनी बहिन याद हो आयी।

"पता नहीं, उस बिचारी का क्या हो ? वह भी शायद इन लोगों में शामिल हो जाये। और स्त्रियों की भी एक टोली बन जाये। म्युनिस्पलिटी वाले शव तो उठा ले जाते हैं, पर मरते को एक कौर तक नहीं देते।"

"क्या इस देश में यह सम्भव है।"

"हां, पहले शायद यह पूछा गया था कि क्या पुरुष कभी इस प्रकार के 'उपद्रव' कर सकेंगे? यदि यह अन्यत्र सम्भव है, तो यहां भी सम्भव है।"

"हां !"

"इसे गांव कहिये या कस्बा, जितना बड़ा यह बीस साल पहले था, उतना बड़ा आज भी है, कहीं कुछ नहीं बना, लोग और जगह चले गये हैं, बाहर से यहां कोई नहीं आया।"

"और आजकल इस तरह हमले किये जा रहे हैं कि कोई आयेगा भी नहीं।"

"कम-से-कम हमला करने वाले तो आयें।" पार्वती ने कहा। फिर दोनों हंसे। "अब वक्त हो गया है, बाबू जी शायद बाहर जायें।"

"क्यों, कार एक ही है ?"

"नहीं, मैं ही अकेली हूं, वे बिना मेरे साथ के, अक्सर बाहर नहीं

जाते।···पुलिस वालों की बात अलग है।"

दोनों हंसे। कार ड्राइवर उनको महल की ओर ले जाने लगा।

"प्रसाद की तो शादी हो रही है, आपकी कब होगी ?"

"मेरी ? शादी ?" पहले भाई की तो होने दीजिये।" पार्वती ने कहा। निरंजन को यह अच्छा लगा कि वह बिना संकोच के बातें कर रही थी। और जब वह हंसती थी, तो निरंजन को गुदगुदी-सी होती थी।

"मेरे यहां आने का अगर कोई फायदा हुआ है, तो आपके परिचय का ही। मुझे आपको जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई, मेरा सौभाग्य है···।"

"आप लेखक है, लेखक ही रहिए, कवि न बनिए···" पार्वती कहती-कहती हंसी। निरंजन भी हंसे।

"आज मैं जा रहा हूं, न मालूम फिर कब मुलाकात हो।···"

"हूं।"

"मुलाकात हो न हो, चिट्ठी-पत्री तो हो ही सकती है।"

"हां, हां," पार्वती फिर हंसी। निरंजन को लगा जैसे वे खायी, पर-कोटा पार कर सीधे किले के अन्दर आ गये हो।

जब वे महल में पहुंचे, तो प्रसाद और उनके पिता पोर्टिको में थे।

"हम देरी से तो नहीं आये ?"

"जी नहीं, कोई बात नहीं।" प्रसाद के पिता ने कहा।

"नमस्कार, अब मैं जाना चाहूंगा, दो-चार दिन अच्छी तरह कट गये, आपको असुविधा हुई होगी। पर मैं कृतज्ञ हूं।"

"अच्छा तो चलो, कार उसी तरफ जा रही है। छोड़ आयेंगे। अब तुम जा सकते हो।···" प्रसाद ने मुस्कराते हुए कहा। निरंजन ने पार्वती की ओर इस तरह देखा जैसे उसकी अनुमति की भी आवश्यकता हो। निरंजन को यह कुछ अटपटा-सा लगा, जो व्यक्ति उसको इतने प्यार से, इतने दिनों से रोके हुए था, कैसे इस शुष्क तरीके से उसको विदा दे रहा था। फिर अपने से कहा, 'शायद मैं गलत सोच रहा हूं, और कहा भी क्या जा सकता है।'

निरंजन अपना बेग ले आये, उसी कार में वे स्टेशन गये, और वहां से हैदराबाद।

॥ दस ॥

जब वे इंग्लैंड से चले थे तो कितने उत्साह से निकले थे—देश के लिए यह करेंगे, यह संगठन स्थापित करेंगे, वह आन्दोलन प्रारम्भ करेंगे, इस तरह जन-चेतना उत्तेजित करेंगे, उस तरह उस चेतना का उपयोग करेंगे ···और क्रान्ति के लिए उपयुक्त वातावरण पैदा करेंगे, पर भारत आकर मामला करीब-करीब उल्टा हो गया। जिस साथी से धन और सहयोग की आशा थी, वह अपने स्वार्थ के लिए, उन उदात्त उद्देश्यों के बारे में तटस्थ हो गया था, जिनका प्रचार वे, सोत्साह इंग्लैंड में किया करते थे। निरंजन को निराशा हुई। जब एक व्यक्ति किसी चीज से वंचित कर दिया जाता है, तो वह या तो साथ के अन्य वंचितों से मिलकर अति उग्र हो जाता है, नहीं तो वंचकों से हाथ मिला लेता है, उन्हीं के साथ मिलकर अपनी बची-खुची सम्पत्ति, प्रतिष्ठा को सुरक्षित करने की कोशिश करने लगता है। प्रसाद से आशा की गई थी कि वे वंचितों से मिलेंगे, वे मिले नहीं।

'प्रसाद के न होने पर, क्या मैं भी अपने कार्यक्रम के बारे में उदासीन हो जाऊं? क्या मैं इसलिए ही इसमें दिलचस्पी ले रहा था,क्योंकि वे इसमें थे? तो सिद्धान्त क्या हुए? सिद्धान्त तो व्यक्ति निरपेक्ष होते हैं। आदर्श क्या हुए? मैं क्या करूं?···पार्वती? उसके विचार बहुत स्पष्ट मालूम होते हैं···उसके भाई के भी, अगर वह भी मौका आने पर एकदम पलट गई तो? पर जब तक वह पलट नहीं जाती है, क्यों उसका अविश्वास किया जाय? उसके हाव-भाव से तो ऐसा लगता है कि उसे भी प्रसाद का इस तरह पलट जाना अच्छा नहीं लगता है, लेकिन वह कब तक साथ देगी?'

निरंजन को हैदराबाद आये, चार-पांच दिन हो गये थे, वे भटके-भटके-से, खोये-खोये-से घूम रहे थे, उनके विचार बेपतवार थे। उद्देश्य भी धुंधला रहे थे। कभी अपने पर शर्मिन्दा होते तो कभी इस तरह के ढाढ़स देते कि इस प्रारम्भिक निर्मोह के बाद भी उनको अपने पथ पर चलते रहने होगा।

वे अपने बारे में, निजी विषयों के बारे में, उतने चिन्तित न थे। भारत का हर नवयुवक, या तो नौकरी के बारे में सोचता है, नहीं तो शादी के बारे में, और दोनों को पाकर जिन्दगी में इस तरह बहता है, जैसे बहने के लिए ही पैदा हुआ हो। नकेल बंधे कोल्हू के बैल की तरह हो जाता है।...निरंजन इस तरह के भारतीय न बनने का प्रण करके आये थे।

इनमें से एक—नौकरी, उनको अनायास मिल गई थी। वे एक स्थानीय प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में अपनी लंडन की डिग्री के भरोसे प्राध्यापक बना दिये गये थे। भारत के परिमाणों के अनुसार, अच्छी खासी तनख्वाह थी। मान-सम्मान था। अध्ययन और गवेषणा के लिए भी काफी समय था। साधन भी प्राप्त थे। इससे अच्छी नौकरी मिलनी मुश्किल थी। पर वे सन्तुष्ट न थे। वे नौकर नहीं होना चाहते, पर क्या करें? आर्थिक विवशता इसका उतना कारण न थी, जितना कि मानसिक रिक्तता। वे अपने को अपनी ही नजर में, दोषी मान रहे थे।

दो-चार दिन साथियों से मिलने-मिलाने में लग गये। किसी से भी विशेष प्रभावित न हुए, बहुत से व्यक्ति थे, पर किसी में व्यक्तित्व न था, सब बहते हुए तमेड़ से थे, एक रोटीन में बंधे हुए विवश लोग, चौखटों में बंधे हुए लोग, जिन पर 'प्रबुद्ध' होकर दूसरों को प्रबुद्ध करने का नैतिक दायित्व था, वे सुप्त-से थे। तरक्की और तनख्वाह के लिए कोई भी तिकड़म उनके लिए हेय न थी। वातावरण इसकदर कलुषित कि उनको आश्चर्य होने लगा था कि भारतीय विश्वविद्यालयों में इतनी कम हड़तालें क्यों होती हैं। बड़े-बड़े ईंट-पत्थर के कलेवर—मजारें-सी। वे क्षुब्ध हो रहे थे, अब वे भी इस वातावरण के अंग हो गये थे, इसलिए वे अपने से ही अत्यंत रुष्ट थे।

नगर में अभी किसी को अच्छी तरह न जानते थे। क्या संस्थायें थीं, और उन संस्थाओं से एक नव नियुक्त प्राध्यापक के क्या सम्बन्ध होने चाहिए थे, यह भी वे निर्णय न कर पा रहे थे। विद्यार्थियों की तीन-चार संस्थायें थीं, पर अपनी आजीविका के आरम्भ में हैं, वे अभी किसी से भी सक्रिय सम्बन्ध न कर पा रहे थे और जब वे यह सोचते, कि वे क्यों न कर

॥ दस ॥

जब वे इंग्लैंड से चले थे तो कितने उत्साह से निकले थे—देश के लिए यह करेंगे, यह संगठन स्थापित करेंगे, वह आन्दोलन प्रारम्भ करेंगे, इस तरह जन-चेतना उत्तेजित करेंगे, उस तरह उस चेतना का उपयोग करेंगे ···और क्रान्ति के लिए उपयुक्त वातावरण पैदा करेंगे, पर भारत आकर मामला करीब-करीब उल्टा हो गया। जिस साथी से धन और सहयोग की आशा थी, वह अपने स्वार्थ के लिए, उन उदात्त उद्देश्यों के बारे में तटस्थ हो गया था, जिनका प्रचार वे, सोत्साह इंग्लैंड में किया करते थे। निरंजन को निराशा हुई। जब एक व्यक्ति किसी चीज से वंचित कर दिया जाता है, तो वह या तो साथ के अन्य वंचितों से मिलकर अति उग्र हो जाता है, नहीं तो वंचकों से हाथ मिला लेता है, उन्हीं के साथ मिलकर अपनी बची-खुची सम्पत्ति, प्रतिष्ठा को सुरक्षित करने की कोशिश करने लगता है। प्रसाद से आशा की गई थी कि वे वंचितों से मिलेंगे, वे मिले नहीं।

'प्रसाद के न होने पर, क्या मैं भी अपने कार्यक्रम के बारे में उदासीन हो जाऊं? क्या मैं इसलिए ही इसमें दिलचस्पी ले रहा था क्योंकि वे इसमें थे? तो सिद्धान्त क्या हुए? सिद्धान्त तो व्यक्ति निरपेक्ष होते हैं। आदर्श क्या हुए? मैं क्या करूं?···पार्वती? उसके विचार बहुत स्पष्ट मालूम होते हैं···उसके भाई के भी, अगर वह भी मौका आने पर एकदम पलट गई तो? पर जब तक वह पलट नहीं जाती है, क्यों उसका अविश्वास किया जाय? उसके हाव-भाव से तो ऐसा लगता है कि उसे भी प्रसाद का इस तरह पलट जाना अच्छा नहीं लगता है, लेकिन वह कब तक साथ देगी?'

निरंजन को हैदराबाद आये, चार-पांच दिन हो गये थे, वे भटके-भटके-से, खोये-खोये-से घूम रहे थे, उनके विचार बेपतवार थे। उद्देश्य भी धुंधला रहे थे। कभी अपने पर शर्मिन्दा होते तो कभी इस तरह के ढाढ़स देते कि इस प्रारम्भिक निर्मोह के बाद भी उनको अपने पथ पर चलते रहने होगा।

में। उनको ऐसा लग रहा था कि वे अपनी परिस्थितियों से भाग रहे थे, जबकि वे भागना नहीं चाहते थे।

मा-बाप को चिट्ठी लिखी, दो-तीन मित्रों को भी लिखी, विदेश के परिचितों को भी तीन-चार चिट्ठियां लिखीं, प्रसाद को लिखी। पर चैन न मिला। उनको लग रहा था कि जैसे कोई मात्र औपचारिक कार्य कर दिया हो। इसमें उनकी मानसिक रिक्तता और विषम ही हुई थी, कम न हुई। चेतना भी अभिशाप है, यदि मनुष्य अपने प्रत्येक कार्य के मध्य में अपने विचार और कार्य की प्रक्रिया के बारे में, आत्मचेत हो जाये। वह तत्परता नहीं आ पाती, जिसके बिना बौद्धिक आनन्द असम्भव है।

आखिर जब समय भारी हो गया, तो वह काम करने लगे, जिसे वे अपने को फुसलाकर टालते आये थे—पार्वती को पत्र लिखना। चार दिन का परिचय, और इतनी घनिष्ठता? शायद वह इसे गलत समझे, धृष्टता भी समझ सकती है। परिचय घनिष्ठता में बदला गया तो? एक और दुविधा? फिर सोचते कि जब इतनी सारी दुविधायें हैं, तो एक और दुविधा के होने से क्या फर्क पड़ता है?

वे एक मयखाने में आ गये, विदेश में ही पीते थे, भारत आकर गांव में पिया नहीं, पर पीने में कोई परहेज न था। दो-चार गिलास निगल कर वे जोश में पार्वती को पत्र लिखने बैठ गये।

प्रिय पार्वती,

आपको छोड़ कर क्या आया हूं, कि ऐसा लगता है कि आप निरंतर मेरे साथ हैं—न घंटी बजाने की जरूरत है, न बुलाने की ही। न प्रतीक्षा की ही। हो सकता है यह आत्मीयता आपको बुरी लगे—माफी मांगू, या यह उम्मीद रखूं कि आप बुरा न मानेंगी।

चार-पांच दिन का ही परिचय है, लेकिन ऐसा लगता है, जैसे सारी जिन्दगी ही आपके संग काट दी हो—और अभी जिन्दगी काफी बाकी है।

मैं प्रसाद से इसलिए मिलने आया था कि कुछ सलाह-मशविरा हो, और उस कार्य की शुरुआत हो, जिसके बारे में हम लंदन में इतना सोचा करते थे। पर वहां आकर ऐसा लगा जैसे वे एक किनारे पर हों, और मैं दूसरे किनारे पर, और बीच का पुल धांय-धांय करके जल रहा हो। आप न

पा रहे थे, वे लज्जित भी होते।

कहीं ऐसा न हुआ हो कि पुलिस ने मेरे बारे में यहां भी रिपोर्ट भेजी हो, पर हमने अभी किया ही क्या है? अगर नौकरी चली गई तो ? नौकरी पाकर वे खास खुश न थे, लेकिन उसको छोड़ने को भी उनका मन तैयार न था।

इस मानसिक खींचातानी में वे सारा शारा शहर घूम आये थे। एक सामन्ती, सोता शहर, उबासी लेकर, अभी-अभी धीमे उठ रहा था। वर्ग, प्राचीन वर्ग, दुर्गों की तरह अपनी-अपनी जगह स्थित थे, कोई विशेष चलन नहीं, आन्दोलन नहीं, धनी, नहीं तो शिक्षित नौकरी पेशा, खूंटों में बंधा, मध्य वर्ग, और एक अजीब नशे में पड़ा अधमरा निम्न वर्ग, जिनकी असंगठित, संख्या ही उनकी शक्ति थी, पर हर व्यक्ति इस बारे में अचेत था। इस शहर में क्या किया जाय ? इस तरह के शहरों में कभी कुछ हो सकता है ? शायद नहीं, कुछ न होगा, कीचड़ में उछलने के समान होगा, जो होगा, सो गांवों में होगा, जहां धनिकों का प्रभाव है, पर जहां धनिकों का भौतिक अस्तित्व कम है। वहां भी संगठन करना होगा, फिर मैं यहां क्यों हूं ?

जितना निरंजन सोचते, उतनी ही उनको आत्मग्लानि होती। एक ही आश्वासन था कि जीवन सामने था, कभी न कभी तो यह कुहरा हटेगा और मार्ग प्रशस्त होगा। मगर कब ? उनको लग रहा था कि उनका घटनाशून्य जीवन दिशाहीन भी हो रहा था।

लंडन हो आना, विदेशों का भ्रमण कर आना, पढ़-पढ़ा कर डिग्री पा लेना भी कोई घटना है, कोई उपलब्धि है, घटना क्या है ? वह जिससे वैयक्तिक जीवन और सामाजिक जीवन में, एक ऐसा परिवर्तन आये, जिससे निजी जीवन को और समाज को नयी दिशा मिले।

वे इतना सोचते कि सोचते-सोचते खीझ उठते।एकाकीपन भी उनको कुरेद-सा रहा था, किसी से मिलने में संकोच। परिचय ही नहीं, तो मैत्री का प्रश्न भी न उठता था। वे अपने ही विचारों में इस तरह बंध गये थे, कि इतना सोचकर भी कुछ सोच न पा रहे थे। वे खाने-पीने के बहाने कभी किसी होटल में जाते, तो कभी किसी सिनेमा घर में, कभी पुस्तकों की दुकान

मे। उनको ऐसा लग रहा था कि वे अपनी परिस्थितियों से भाग रहे थे, जबकि वे भागना नहीं चाहते थे।

मा-बाप को चिट्ठी लिखी, दो-तीन मित्रों को भी लिखी, विदेश के परिचितों को भी तीन-चार चिट्ठियां लिखी, प्रसाद को लिखी। पर चैन न मिला। उनको लग रहा था कि जैसे कोई मात्र औपचारिक कार्य कर दिया हो। इसमे उनकी मानसिक रिक्तता और विषम ही हुई थी, कम न हुई। चेतना भी अभिशाप है, यदि मनुष्य अपने प्रत्येक कार्य के मध्य में अपने विचार और कार्य की प्रक्रिया के बारे में, आत्मचेत हो जाये। वह तत्परता नहीं आ पाती, जिसके बिना बौद्धिक आनन्द असम्भव है।

आखिर जब समय भारी हो गया, तो वह काम करने लगे, जिसे वे अपने को फुसलाकर टालते आये थे—पार्वती को पत्र लिखना। चार दिन का परिचय, और इतनी घनिष्ठता? शायद वह इसे गलत समझे, धृष्टता भी समझ सकती है। परिचय घनिष्ठता मे बढ़ता गया तो? एक और दुविधा? फिर सोचते कि जब इतनी सारी दुविधायें है, तो एक और दुविधा के होने मे क्या फर्क पड़ता है?

वे एक मयखाने मे आ गये, विदेश मे ही पीते थे, भारत आकर गाव मे पिया नही, पर पीने मे कोई परहेज न था। दो-चार गिलास निगल कर वे जोश मे पार्वती को पत्र लिखने बैठ गये।

प्रिय पार्वती,

आपको छोड़ कर क्या आया हू, कि ऐसा लगता है कि आप निरतर मेरे साथ है—न घटी बजाने की जरूरत है, न बुलाने की ही। न प्रतीक्षा की ही। हो सकता है यह आत्मीयता आपको बुरी लगे—माफी मागू, या यह उमीद रखूं कि आप बुरा न मानेंगी।

चार-पाच दिन का ही परिचय है, लेकिन ऐसा लगता है, जैसे सारी जिन्दगी ही आपके सग काट दी हो—और अभी जिन्दगी काफी बाकी है।

मैं प्रसाद मे इसलिए मिलने आया था कि कुछ सलाह-मशविरा हो, और उस कार्य की शुरुआत हो, जिसके बारे मे हम लंडन मे इतना सोचा करते थे। पर वहां आकर ऐसा लगा जैसे वे एक किनारे पर हों, और मैं दूसरे किनारे पर, और बीच का पुल धाय-धाय करके जल रहा हो। आप न

होतीं, तो न मालूम वहां बैठा-बैठा क्या-क्या सोचता ?

इतना सोचा था, मगर यहां आकर सब चौपट हो गया, ऐसा अनुभव होता है कि हम स्थिर खड़े हैं, और हमारे चारों ओर भयंकर गति हो रही है। हम, जिनको इस गति को और गति देनी चाहिए थी, इस बदलती स्थिति में प्रोत्साहक, प्रेक्षक भी नहीं बन पा रहे हैं। क्या परिस्थिति बदल रही है ? हां, मगर हमारे कारण नहीं।

आपका सहयोग तो पूरा था, पर मैं ही इस तरह उचटा-उचटा हुआ था कि वहां कुछ न लिख सका, वहां से आकर भी कुछ न लिख सका। मगर मैं आपके स्नेहपूर्ण सहयोग के लिए आभारी हूं। और सोचता हूं कि मैं कभी इस सहयोग से वंचित न किया जाऊंगा।

मैं ही जानता हूं कि मैंने ये पांच दिन कैसे काटे हैं। न मालूम इस मनहूस जगह पर, इस मनहूस मूड में, मुझे कितने दिन और काटने पड़ें। कोई न कोई तो मार्ग मिलेगा, जब मुझे भी अपने जीवन को सार्थक करने का मौका मिलेगा।

पता नहीं फिर कब उधर आना हो। आप तो शायद यहां आती ही होंगी। प्रसाद भी आते होंगे। जब कभी आयें, तब जरूर सूचना दें··· उत्तर तो देंगी ही।

कैसे बताऊं कि यह चिट्ठी लिख कर मेरा मन कितना हल्का हुआ है। मैंने अपने को अपने काम में भूलने की कोशिश की है, लेकिन भूल नहीं पाया हूं। आपको चिट्ठी लिख कर भूलने की कोशिश की, लेकिन आपको याद करके मैं अपने को कैसे भूलूं ?

एकाकी हूं, बहुत कुछ लिख गया, अगर आपने चिट्ठी न लिखी तो मैं सोचूंगा कि आप बुरा मान गई हैं, और अपने से कहूंगा कि जिस तिनके के सहारे, मैं तैरने की कोशिश कर रहा था, वह भी दूर चला गया है। क्या···क्या आप दूर चली जायेंगी ? नहीं, नहीं···

सप्रेम,

आपका
निरंजन

॥ ग्यारह ॥

न मालूम कैसे खबर फैल गई थी—हमारा समाज और सामाजिक सम्बन्ध ही कुछ ऐसे हैं कि हर कोई हर किसी के बारे में, बहुत ही कम समय में जान जाता है। निरंजन यद्यपि अपने बारे में मौन थे, लेकिन उनके बारे में, उनके सहयोगी काफी कुछ जान गये थे। और वे मुखर भी थे। विदेश में जिसे प्रायवेसी कहा जाता है, उसे हमारी अनियंत्रित उत्कंठा ने निगल-सा लिया है।

जो भी हो, श्री रामशास्त्री, निरंजन से अधिक मिलने-जुलने लगे। वे कालेज की छोटी श्रेणियों में अंग्रेजी पढ़ाते थे। निरंजन भले ही उनके ऊपर न हों, पर वे उसी विभाग में एक उच्चतर पद पर थे। इसलिए उनसे मेलजोल रखना, दुनियादारी के अलावा व्यावसायिक बुद्धिमत्ता भी थी। रामशास्त्री दुनियादार ही नहीं, दुनियावी बातों में चतुर भी थे।

यही नहीं, रामशास्त्री उसी गांव के थे, जिसके श्री प्रसाद थे पुश्तैनी मालिक थे। उनके ही मंदिर में उनके पिता पुजारी थे। प्रसाद की पिता की कृपा से और उनकी आर्थिक सहायता से, वे पढ़-लिख पाये थे, और उन्हीं की धाक की वजह से, उनको यह नौकरी भी मिली थी। उनके मन में श्री प्रसाद के परिवार के प्रति कृतज्ञता थी कि नहीं, पर उनके परिचितों के सामने वे उसे प्रायः बढ़ा-चढ़ा कर व्यक्त किया करते थे। वैसे कृतघ्न होना उनके स्वभाव में नहीं मालूम होता था।

रामशास्त्री को जानकारी मिल गई थी कि निरंजन, प्रसाद के निकट मित्र थे। हो सकता है कि इस विषय में उनके पिता जी ने लिखा हो।

वे प्रायः निरंजन के कमरे में आया करते। कुछ भी हो, निरंजन प्रकृति से मिलनसार थे। और अधिक मितभाषी भी नहीं। एकान्त से उकता उठते थे, ऊब जाते थे। और रामशास्त्री बातूनी थे, मसोड़। उनसे संग निरंजन का मनोरंजन भी हो जाता था।

रामशास्त्री से ही उनको मालूम हुआ कि नगर में लेखकों का एक ऐसा वृन्द था, जो समकालीन साहित्य में तो ज्यादातुर्दी-सा था ही,

साहित्य के द्वारा समाज में विस्फोटक चेतना पैदा करने की कोशिश कर रहा था, जो कालान्तर में क्रान्ति के रूप में प्रस्फुटित हो सके। एक ऐसे साहित्य में, जिसके मूल्य आज की आवश्यकताओं के अनुकूल न थे—सामन्ती मूल्य, जो शोभन भले ही हों, पर जो उपयोगी कम हो गये थे। ऐसे वृन्द का आना ही एक महत्त्वपूर्ण घटना थी, भले ही, उसकी साहित्य को देन, ललित साहित्य के मापदण्डों के अनुसार, त्रुटिपूर्ण और दोषपूर्ण हों। इसी कारण, निरंजन उनके प्रति आकर्षित हुए।

रामशास्त्री ने उनमें से एक अप्रमुख कवि से उनका परिचय कराया। उस कवि ने, उनका और साथ के कवियों से परिचय कराया। निरंजन अभी लेखक न थे। अपनी भाषा में तो उन्होंने सिवाय पाठ्यक्रम के लिए आवश्यक निबन्ध के अतिरिक्त कभी कुछ लिखा भी न था। किन्तु, चूंकि वे अंग्रेजी पढ़ाते थे, इसलिए उनका समाज में उनके पद के अनुरूप सम्मान था। इसलिए उस वृन्द में उनका स्वागत भी हुआ।

ऐसे संगठनों में होना तो यह चाहिये, कि जब तक एक व्यक्ति के बारे में, पूरी जानकारी न हो, उनको सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिये, पर निरंजन का इस प्रकार का स्वागत किया गया, जैसे वह लेखकों की संस्था न होकर कोई क्लब हो, और उनके आने की प्रतीक्षा की जा रही हो, यह निरंजन को न भाया, फिर उन्होंने सोचा कि शायद यहां ऐसा ही होता हो।

उनको उन कवियों का व्यवहार भी अभिनय-सा लगा। उनकी कृतियों को भी वे पढ़ गये, उनमें आग उगाली गई थी, समाज को गालियां दी गई थीं, शैली में नये परीक्षण भी किये गये थे, पर उनमें बड़ी कटुता थी, कटुता अपने आप में खराब नहीं है, अगर आदमी को कटु अनुभवों से गुजरना पड़ जाये, और साहित्य को वास्तविक बनाना आवश्यक हो जाय तो कटुता स्वाभाविक ही है, किन्तु वह कटुता नग्न थी। वर्तमान समाज को नष्ट कर देना चाहिए, उसके स्थान पर कौन-सा समाज बनाया जाए इस बारे में वे या तो अन्धेरे में थे, नहीं तो चुप। खैर निष्क्रिय होने से अच्छा ही है।

निरंजन उनसे मिलते ही न बल्कि, उनको वे अपने कमरे में

करते, उनके साथ उठते-बैठते, खाते-पीते, उनके प्रकाशनों के लिए आर्थिक सहायता भी देते, और उनको यह सान्त्वना भी होती, कि केवल नौकरी में ही, वे अपना समय व्यर्थ न करके, समाज के लिए कुछ उपयोगी कार्य कर रहे थे। निरंजन को कभी-कभी ऐसा भी लगता जैसे उनको जीवन का उद्देश्य मिल गया हो। उनमें त्रुटियां हो सकती हैं,—त्रुटियां कहां नहीं है?

यह उनको कुछ हद तक भाया, पर निरंजन यह न पसंद करते थे कि जो अपनी कविताओं में आग उगल रहे थे, वे क्यों उपनामों का मुखौटा पहने हुए थे, क्यों नहीं अपने नाम से ही लिख रहे थे—नामों के परिवर्तन मात्र से तो उनका व्यक्तित्व नहीं बदल जाता, उनका अतीत और अस्तित्व तो नहीं बदल जाता? फिर यह क्यों नामों का आच्छादन हो रहा है, क्या इनमें साहस की कमी है?

वे अपने साधारण जीवन में साधारण व्यक्ति थे, कोई कहीं क्लर्क था, तो कहीं टीचर, एक तो कहीं किसी बड़े पद पर भी थे, यानी वे एक ऐसी व्यवस्था में सम्बन्धित थे जिसका कि वे विनाश करना चाहते थे। क्या यह एक प्रकार का छल नहीं है—अपने में और अपने समाज में? क्या ये सिर्फ नारेबाज ही हैं, अपने उद्देश्यों के बारे में ईमानदार नहीं हैं?"

ये सब सन्देह निरंजन के मन में उठते, फिर वे अपने से कहते—'ये मुझसे तो अच्छे हैं ही, कम से कम कुछ कर तो रहे हैं जब दुर्ग में प्रवेश करना होता है, तो कितने ही छद्म नाम रखने होते हैं, कितने ही व्यूह रचने होते हैं, सीधे-सीधे जाने से मुंह की खानी होती है। ठीक है, मुझमें ही शायद अनुभव की कमी है।' वे अपने को समझाते और अपने को उनके और निकट पाते।

यह कार्य कुछ ऐसा था जिससे उनको अपनी नौकरी भी खराब नहीं लग रही थी। विद्यार्थियों में भी दो-चार ऐसे थे, जो उनसे सहज प्रभावित और आकृष्ट हो गये थे। भले ही इस कारण कुछ अधिकारियों की भृकुटियां तनी हों, पर वे विद्यार्थियों में शनैः-शनैः लोकप्रिय होते जा रहे थे। हैदराबाद अब उनको उतना अखर नहीं रहा था।

यद्यपि वे चलने लगे थे, पर ऐसा लगता था जैसे वे एक चक्कर

रहे हों—एक भंवर में हों। प्रगति न सही गति तो थी उनकी मानसिक घुटन कुछ-कुछ कम हो रही थी।

जैसे-जैसे वे अपने कार्य में अपनी परिपूर्ति खोजने की कोशिश करते, अपनी रिक्तता को भरने की कोशिश करते, वैसे-वैसे ही, दूर होते हुए भी, एक अजीब शक्ति द्वारा, पार्वती की ओर आसक्त होते जाते। यह सुखद अनुभव था। लेकिन सोचने की आदत थी, इसलिए इस बारे में रह-रहकर सोचते और सोचते जाते, हवाई किले बनाते। कभी किसी भारतीय प्रथा को अनावश्यक मानते तो कभी उसको युक्तियुक्त करने का प्रयत्न करते, और अपने को बौद्धिक रूप से अपरिपक्व पाते।

उनको एक और तसल्ली भी थी, वे अपनी तनख्वाह का पचास प्रतिशत घर भेज रहे थे—उस ऋण को चुकाने के लिए, जिसे उनके मां-बाप ने, उनकी शिक्षा के लिए लिया था। जिस धन को वे दहेज में पाना चाहते थे, निरंजन उसको स्वयं कमाकर उनको भेज रहे थे। बहिन की शादी का प्रश्न उनके सामने दिन-प्रतिदिन विकट होता जा रहा था।—'मैं बदला हूं मेरे मां-बाप तो नहीं बदले हैं ? मेरी बहिन तो नहीं बदली है ?'

शादी की बात मन में आती, तो वे मचल उठते। वे तड़प जाते, क्यों नहीं पार्वती ने उनके पत्र का उत्तर दिया था।

॥ बारह ॥

इर्द-गिर्द होने को बहुत कुछ हो रहा था, पर होता तभी कुछ है, जब मन चाहा होता है।

अभी निरंजन अखबार पढ़ रहे थे। प्रान्त के पर्वतीय प्रदेश में एक नया हिंसापूर्ण आन्दोलन चल पड़ा था, दो-चार जमींदार मार दिये गये थे। आतंक छाया हुआ था। निरंजन सोच रहे थे कि क्या क्रान्तिकारी लेखकों

का इन आन्दोलनकारियों से कोई सम्बन्ध है ? क्या वे शिक्षित भी हैं ? क्या साहित्य में वह क्षमता है कि एक सुप्त, मृतप्राय समाज में चेतना का संचार कर सके ? शायद इस सिलसिले में निरंजन सोचते जाते यदि इस बीच पार्वती का पत्र न आ जाता।

वे उसकी लिखावट जानते थे, चिट्ठी उसी की थी, चाहते थे कि तुरत खोलें, फिर सोचा कि जब इतने दिन बाद लिखा है, न मालूम क्या लिखा हो। हिचकते रहे। कॉफी की चुसकियां लेते रहे, न अखबार में मन लग रहा था, न कहीं और। मन में उत्कंठा की गुदगुदी हो रही थी, कहीं भय भी था।

पत्र खोला, एक बार सरसरी निगाह से पढ़ गये, चेहरे पर मुस्कराहट दौड़ गई, आश्वस्त हुए। फिर धीमे-धीमे एक-एक अक्षर करके उसे चाव से पढ़ने लगे, जैसे पार्वती का पत्र ही प्रेम पत्र हो।

"मैं आपके पत्र का उत्तर पहले ही देती यदि मेरे स्वास्थ्य ने मेरा साथ दिया होता।"

'···*क्या हो गया ? स्वस्थ लड़की है, और स्वास्थ्य इतना कैसे बिगड़ा* कि चिट्ठी भी न लिख सके ? कहीं यह बहाना तो न था ? फिर चिट्ठी लिखी ही क्यों, मैं भी क्या अहमक हूं कि छोटी-छोटी बातों में बड़ी-बड़ी बातों की कल्पना करने लगता हूं।'

"फिर एक और घटना हो गई, जिसकी हमने कल्पना भी न की थी, यद्यपि होने को आजकल सभी तरह की घटनायें हो रही हैं।

"मैं हैदराबाद आयी, और आप से मिल न सकी, काश, मिल पाती···"

'खैर, कोई बात नहीं मिलना तो चाहती थी। यही मेरे लिए काफी है··' निरंजन का मन्दहास कुछ और गहराया।

"न मिल सकी, तो कोई बात नहीं, हो सकता है कि हम भी हैदराबाद में बस जायें। खैर···"

'किस···किस्मत मेरा इस तरह साथ देती रहे तो क्या ही अच्छा हो।'

"हुआ यह था कि जिस लारी में हमारा सामान जा रहा था, लोगों ने

उसे रास्ते में घेर लिया, और लूट लिया। बहुत नुकसान हुआ, बहुत सी कीमती चीजें, जो खानदान में कई पीढ़ियों से चली आ रही थीं, ऐसे लोगों के हाथ में चली गई जिनके लिए उनका कोई भावात्मक महत्व नहीं था। कई लॉरियोंमें सामान गया था पर यह लॉरी ही क्यों लूटी गई? क्या लोगों को मालूम था कि इसमें कीमती चीजें जा रही हैं। बाबूजी का शक है कि यह भी उन्हीं लोगों की करतूत है, जिन्होंने बड़े भाई का कुछ दिन पहले कत्ल किया था। पुलिस तहकीकात कर रही है, लेकिन यह बात साफ होती जा रही है कि बाबूजी का यहां रहना मुश्किल है। इसलिए वे बचा-खुचा सामान,—सारी अस्थिर सम्पत्ति वे हैदराबाद ले जा रहे थे। वह हर लॉरी के साथ खुद जाते हैं, और मुझे भी अपने साथ ले जाते हैं। उनका भरोसा है, कि जब तक मैं उनके साथ हूं—वे सुरक्षित हैं।"

'शायद यही कारण है, पार्वती, वे तुम्हारी शादी के बारे में चिन्तित नहीं हैं। स्वार्थ बच्चों से भी पहले आता है। क्या ये भी इतने कमीने हैं, यह तो मध्यवर्गीय सिफत है।'

"हम कई बार हैदराबाद आये-गये, अब भी काफी कुछ ले जाना है। पर मेरी तबीयत ही ठीक नहीं है। मन नहीं लगता है, भाई घूम-फिर रहे हैं, माता जी हैदराबाद में ही हैं। यह बड़ा मकान सूना-सा लगता है। आप जैसे अतिथि भी नहीं हैं कि सेवा में ही समय कट जाये।"

'यानी मैं उनके मन से बिल्कुल ओझल नहीं हुआ हूं। गनीमत है, उनको मेरा कुछ ख्याल तो है। मैं पगलाया हुआ शायर नहीं हूं कि ऐसे चान्द को मानता रहूं जो अपनी जगह से हिले ही न...एकतरफा प्रेम शायरों को ही मुबारक हो।'

"आपकी बातें याद आती हैं..."

'शायद यह कहना चाह रही है कि मैं याद आता हूं।'

"गांव के आस-पास बहुत सरगर्मी है, पर गांव में श्मशान का सन्नाटा है, उजड़ा-उजड़ा सा है। शहर बस रहे हैं कि नहीं, पर शहरों के मोह में गांव उजड़ रहे हैं।"

'बहुत पते की बात है!'

"आप लेखक हैं, लेखक हैं वास्तविकता के, राजनीतिक सिद्धान्तों के

नही, परन्तु उनकी कार्यान्विति के···कभी आइये न।"

'यह क्या प्रशंसा है, क्या व्यंग्य है ? नही, पार्वती भोलीभाली न सही, नटखट भी नही है। बुलाया है, जाएंगे। यहा बुरी तरह नौकरी मे फंसे हैं। समय पहाड बना रहता है, लेकिन इससे कोई बचाव भी नही है। जाएंगे और जरूर जाएंगे।'

"पत्र का तुरत उत्तर न दे पायी, हो सकता है कि आप कुछ रुष्ट भी हुए हों—मैं इस विलम्ब के लिए क्षमार्थी हू।"

'फिर यह औपचारिकता क्या ? लड़कियो को समझना मुश्किल, और अगर वे दिमाग की तेज हो, तो एक चेतावनी हैं—सोचने वालो के लिए भी।'

यही चिट्ठी थी, तीन-चार बार उसे पढा, और हर बार उनके मन मे भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियायें हो रही थी, एक भीना-भीना-सा अनुभव हो रहा था। वे ख्याली दुनिया मे थे कि कमरे की कालिंग बेल बजी।

वे दरवाजा खोलने गये। एक बहुत ही प्रभावशाली व्यक्ति देशीय शुभ्र वेशभूषा मे, वहा खडे थे। यह सोच कि कही वे गलत पते पर तो नही आ गये थे, निरंजन ने कहा, "मेरा नाम निरजन है,—आप ?"

"हम आपसे ही मिलने आये हैं···"

"आइये," निरंजन ने नमस्कार किया, उन सज्जन ने हाथ इस प्रकार उठाये,जैसे नमस्कार आसानी से करना उनके स्वभाव मे न हो। हाव-भाव के जाना जा सकता था कि वे न अशिष्ट थे, न असभ्य। उनके समाज मे, बड़े छोटो को, भले ही वे इग्लैंड वापिस हो, आसानी से नमस्कार नही कर पाते थे।

निरजन का कमरा वैसा ही था जैसा कि एक पढाकू ब्रह्मचारी का होता है। एक मेज पर ढेर सी किताबें खूटियो पर मैले, अचुद्दे लत्ते। पलंग पर रेडियो और किताबें। कुर्सी पर तौलिये, और जगह-जगह सिगरेट के टुकडे। कमरा बुहारा भी नही गया था।

एक कुर्सी खाली करते हुए निरंजन ने कहा, "बैठिये, आपको तकलीफ तो होगी।"

"क्या तकलीफ है, जब तक कुर्सी के पाये अपनी जगह पर हैं।" उस

सज्जन ने गम्भीर औपचारिकता को कम करने की दृष्टि से, बनावटी मुस्कराहट के साथ कहा। निरंजन मुस्कराये।

"मेरा नाम कुटुम्ब राव है। हम कोन्डापल्ली के हैं। वहां कभी जमींदारी थी, आज भी दो-ढाई सौ की खेती होती है। आपके पिताजी ने आपको बताया ही होगा···" कुछ समय बाद उस सज्जन ने कहा।

तुरत निरंजन को याद आया, कि उनके पिता जी ने जिक्र किया था, इस तरह और इतनी बार किया था कि उन्होंने उनका कहना हर बार अनसुना कर दिया था। उनको कल्पना न थी कि वे सज्जन, उनको खोजते यहां भी आ जायेंगे। निरंजन ने बात बदलनी चाही— "आपको कैसे मालूम हुआ कि मैं यहां हूं?"

"यह तो कोई बड़ी बात नहीं है, क्या आपसे और कोई नहीं मिलने आया?"

"नहीं तो।"

"आप कहीं बाहर तो नहीं जा रहे हैं?

"अभी तो कोई इरादा नहीं है, यानी शहर छोड़कर नहीं, मगर आज क्लास है।"

"हम आपका ज्यादह समय नहीं लेंगे। हम आपके पिता जी के पास भी गये थे। उन्होंने बताया कि उन्होंने आपसे बातचीत की थी, और आपने कहा था कि आप स्वयं इस बारे में निर्णय करेंगे। हमने सोचा कि हम ही खुद आपसे बातचीत कर लें।"

"हूं, अगर आपको एतराज न हो तो मैं क्या सिगरेट सुलगा सकता हूं।" निरंजन ने कहा। यह उनकी आदत सी बन गई थी, जब कुछ ऐसी-वैसी बात उठती तो वे झट सिगरेट सुलगा लेते।

"हां, हां जरूर—हमारी एक ही लड़की है, ज्यादह पढ़ी-लिखी नहीं है, उसके नाम एक-डेढ़ लाख की जायजाद है। हम चाहते हैं···"

"बात चल पड़ी है तो मैं साफ कह दूं कि मैंने अभी शादी के बारे में कोई निश्चय नहीं लिया है, अभी तो नौकरी में लगा हूं।"

"पैसे-वैसे की फिक्र न कीजिये···"

"मुझे पैसे की फिक्र नहीं है, प्रोफेशन की है···" निरंजन तुरत चेते

कि वे व्यर्थ अप्रिय हो रहे थे—"जब कभी निश्चय करूंगा तो पिता जी आपको सूचित करेंगे ही।"

"अच्छा, तभी ही सही, हम प्रतीक्षा कर सकते हैं।"

निरंजन को लगा कि वे उनका शिष्टतापूर्ण आशय गलत समझ गये थे। इससे अधिक वे उस समय कह भी न सकते थे।

"आप आये, और मैं आपकी खातिरदारी भी न कर सका। माफी चाहता हूं।" निरंजन ने कहा।

"खातिरदारी तो मुझे करनी चाहिये, मैं यहां 'रिट्ज' में ठहरा हूं, आप जब चाहें तब आइये, कहें तो मैं गाड़ी भिजवा दूंगा···" उन व्यक्ति ने रईसाना ढंग से निमन्त्रण दिया। निरंजन जानते थे कि वे अपनी हैसियत दिखाने के लिए ही ये प्रगल्भ से कर रहे थे। वे मुस्करा दिये।

"मैं आपको तकलीफ न दूंगा, फोन कर दूंगा।"

वे महाशय उठ गये थे। निरंजन किवाड़ खोल कर उनको विदा करने के लिए बराण्डे में बढ़े।

"आप बैठिये, बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर, हम चाहते हैं कि यह मिलन बना रहे, अच्छा, फिर मुलाकात होगी ही···" वे यह कहते-कहते इधर-उधर देखते आगे चले गये।

निरंजन स्तब्ध से थे। वे सज्जन शिष्ट व्यक्ति थे, पर उनका इस तरह आना, और भाव-ताव करना उनको बिल्कुल न जंचा। जब यहां का हर कोई इस तरह का ही व्यवहार करता हो, उनको यह भी लगा, कि उनको बुरा नहीं मानना चाहिये—'हम कोई मवेशी हैं कि हाट में रस्सा और बोलियां बुलवाने लगे।···यही हो रहा है, शायद यहीं होता रहे।'

॥ तेरह ॥

संयोग की ही वात थी कि उस दिन निरंजन को यकायक विशाखापट्टनं जाना पड़ा। वहां के विश्वविद्यालय में ही उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। विदेश से लौटने के बाद वे वहां जाना भी चाहते थे, पर जा न सके थे। अब उनको मौका मिल रहा था।

निरंजन जिस क्रांतिकारी लेखकों के वृन्द से सम्बन्धित थे, वह विशाखापट्टनं में, एक पुस्तक के प्रकाशन कें सिलसिले में कुछ आयोजन कर रहे थे। उनका आग्रह था कि निरंजन भी उस अनुष्ठान में उपस्थित हों।

उन्होंने पार्वती को लिखा कि वे विशाखपाट्नं, फलां गाड़ी से जा रहे थे। गाड़ी उनके प्रदेश से गुजरती थी, यद्यपि वह जहां रुकती थी, वह स्टेशन चालीस मील दूर था।

निरंजन अवकाश लेकर स्टेशन पर आये। उनके साथ उनके दो-तीन विद्यार्थी भी थे। स्टेशन पर काफी भीड़ थी। असाधारण भीड़। निरंजन ने सोचा कि कोई बड़े नेता जा रहे होंगे। लोग दीवारों से, रेलिंग से फुदक-फुदक कर न मालूम क्या देख रहे थे। पुलिस तैनात थी।

पूछताछ करके, विद्यार्थियों ने मालूम किया कि एक फिल्म प्रोड्यूसर अपनी यूनिट और अभिनेता-अभिनेत्रियों के साथ, विशाखापट्टनं जा रहे थे। वे वहां के जंगलों में, सुना गया, कोई फिल्म बना रहे थे। गाड़ी में उन्होंने पूरा का पूरा डिब्बा ले रखा था। और भीड़ उसको घेरे हुए थी फिर पुलिस क्यों थी?

विद्यार्थियों ने पता किया कि दो-तीन डिब्बे रिजर्व पुलिस के भी गाड़ी में जोड़े जा रहे थे। क्यों? विशाखापट्टनं के इलाके में, हिंसापूर्ण आन्दोलन चल रहे थे। जंगलों में, कई की हत्या कर दी गई थी। पुलिस 'हत्यारों' को पकड़ने की कोशिश कर रही थी। पर अब तक उनको विशेष सफलता न मिली थी। इसलिए पुलिस की कुमुक, वहां भेजी जा रही थी। संयोग की शृंखला में यह भी एक संयोग था।

निरंजन के साथ, उसके वृन्द के दो-चार लेखक उसी गाड़ी में यात्रा कर रहे थे। एक तो उन्ही के डिब्बे में ही थे। उनका कहना था कि पुलिस उन्ही के समारोह के लिए भेजी जा रही थी। इतनी सारी पुलिस? हमारे देश मे मच्छरो को मशीन गनो से मारने की आदत पुरानी है। आश्चर्य न होगा यदि वे इसी कार्य पर भेजे जा रहे हो।

गाडी चलने तक काफी चहल-पहल रही। सवेरे का समय था और अवकाश का दिन। काफी रौनक थी।

गाड़ी चलने से पहले, निरंजन भी कुतूहलवश, उस डिब्बे मे झांक आये थे, जिसमे अभिनेता,और अभिनेत्रियोकी पार्टी आ रही थी। क्योंकि फिल्म देखे अर्सा हो गया था, इसीलिए उनमे कोई भी उनका जाना-पहचाना न था, यद्यपि वे विदेश जाने से पहले, फिल्मो के बारे मे पगलाये रहते थे।

यह यात्रा उनके लिये एक भावात्मक यात्रा-सी थी--भूत के अन्वेषण की यात्रा सी। वे उल्लसित थे।

गाडी चलने के बाद,साथ वाले लेखक कहने लगे—"आपको भी क्या फिल्मों का शौक है?"

'कभी था," निरजन ने कहा।

"ये जो फिल्म प्रोड्यूसर हमारे साथ आ रहे हैं, इनका किस्सा भी अजीब है। गिरगिट है, बड़े जुगतिया है। जिस ओर हवा उस ओर इनके कदम, और नारे हमेशा आदर्शों के, प्रगति के'' " निरंजन इस तरह हसे, जैसे इस का एक आदमी नही, हिन्दुस्तान मे पूरी की पूरी जमात हो। इस तरह के व्यक्ति अपवाद न होकर नियम मे थे। "हू," कह दिया ताकि बातों का सिलसिला न टूट जाये।

"इन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए, पैसे दिये है, जिसका हम विशाखापट्टनं में 'विमोचन समारोह' कर रहे हैं।"

'इन्होने? यानी एक पूजीपति ने?"

'जी हा, कहा न, चलते हुए आदमी हैं। पैसा उनके हाथ मे है, वे जानते हैं कि पैसा जिस तरह बोलता है, उस तरह कोई और चीज नहीं बोलती। मगर वे यूं ही फूंकने वाले आदमी नही हैं। इसके पीछे भी कोई

चाल होगी।"

शायद खानदानी आदमी हैं, और तरक्की पसन्द ख्यालातों के हैं।"

वे लेखक ठहाका मारकर हंसे—"जी नहीं. बड़ी गई गुजरी हालत थी इनकी। प्याज का व्यापार करते थे। व्यापार चौपट हो गया। इनको पढ़ाई-लिखाई छोड़नी पड़ी। ये तब कम्यूनिस्ट हो गये। सुनते हैं, युद्ध के दिनों में इन्होंने, मद्रास के बीच पर 'पीपल्स वार' भी बेचा था। दिन-रात पार्टी का काम करते थे।"

"क्या अब नहीं करते ?"

"अब तो फिल्में बनाते हैं, सरमायेदार हैं। कितनी ही यूनियनों को दिन-रात धोखा देते हैं, ठगते हैं। गरीबों का पैसा मारे हुए हैं, इन पर पैसा क्या बरसा कि दिमाग ही फिर गया।..."

"हां, अक्सर यही होता है।"

"दिमाग फिरा ही है, अभी पूरी तरह बिगड़ा नहीं है, जब कम्युनिस्टों ने धमकी दी कि स्टूडियो जला देंगे, तो उनको भी पैसा देकर टरका दिया। जब उन्होंने जान की धमकी दी तो इन्होंने कहा कि मैं ऐसी पिक्चर लूंगा, जिससे जनता में नई चेतना आयेगी..."

"यह खराब बात नहीं है।"

"लेकिन यह सब शुरू हुआ धमकी देने पर ही। यह भी सम्भव है कि वे हमारी आंखों में धूल झोंक रहे हों। अव्वल दर्जे के पहुंचे हुए आदमी हैं।"

"हूं ?"

"अब विशाखापट्नं के आस-पास जो आन्दोलन चल रहा है, उसको आधार बना कर ये फिल्म बना रहे हैं।"

"अच्छा ही है।"

"अच्छा तब कहिये जब यह फिल्म बन कर पूरी हो जाये। यह हर किसी से कुछ न कुछ कहते जाते हैं। चाहे पैसा हम मांगें, या परम्परावादी पंडित। उनको भी पैसा देंगे, और हमें भी। उनको पैसा अप्रिय हो, ऐसी बात नहीं, परन्तु उनको अपने प्राण ज्यादह प्रिय हैं..."

दोनों ठहाका करके हंसे। तुरन्त निरंजन को प्रसाद स्मरण हो आये।

ये सभी ढलान पर हैं, और निरन्तर फिसल रहे हैं। और मैं···?

वे पुस्तक लेकर पढ सकते थे। पुस्तकें लाये भी थे। उन्होंने दिन की गाडी चुनी ही इसलिए थी कि सारा प्रदेश देखते चलें। गाडी की खिड़की मे जिस तरह भारत देखा जा सकता है, उतनी अच्छी तरह शायद किसी और तरीके मे नहीं देखा जा सकता।

देश क्या है, गरीबी का जीता-जागता चित्र है। गांव हैं, तो वे ही झोपडियां, गन्दगी, नग-धड़ंग लोग। मजबूर बेहाल लोग, सदियों की गरीबी यहां जम सी गई है। दिल दुखता है। आह-सी निकलती है। दो जून खाना भी अखरना है।

एक चीज देखते हैं, और सैकड़ो बातें दिलो-दिमाग को कुरेदती उभरती हैं। आखो के सामने अजीब सा सपना खिलने लगता है, बातें कही से शुरू होती हैं, और कहीं-कहीं चलती जाती हैं, और अगर इन सबके साथ आदर्शवाद की आग सुलग रही हो, तो एक ही बात एक ही समय में, कई पटरियो पर, चलने लगती है। किन्तु यह सारी प्रक्रिया एक विचित्र-सा अनुभव है।

उनके ख्यालों में, ख्वाबों में, पार्वती बहुत से रूपों में, मुद्राओं मे आ-जा रही थी। निरंजन ने कभी यह न सोचा था कि पहली नजर में, उन पर कोई स्त्री इतना गहरा प्रभाव डालेगी। वे कितनी ही स्त्रियों से मिले थे, पर सबकी याद धुंधली थी। पार्वती से ज्यादा मिले भी न थे। लेकिन वह उन पर हावी-सी थी। कभी-कभी निरंजन को स्वय यह अजीब-सा लगता। कई बातें स्वय हो जाती हैं, हमारे बावजूद, इस तरह का एहसास उनको पहली बार हो रहा था।

न जाने कैसे समय कट गया। दुपहर बाद वह स्टेशन आया, जो पार्वती के गांव से कोई चालीस मील दूर था। प्लेटफार्म पर पार्वती को देखकर, उनके आश्चर्य की सीमा न रही। तुरत जा उतरे, और फिर दोनो साथ डिब्बे की ओर चले।

"आपने क्यों तकलीफ की ?" निरंजन ने अचम्भे में पूछा।

"आप इस तरह से गुजरें और हम न मिलें···" पार्वती कुछ झिझकी, कुछ और कहना चाहती थी, फिर सभल कर बोली—"यह भी कोई

शिष्टता है।" उनका चेहरा दमक रहा था।

"आपका गांव तो बहुत दूर है।"

"कितनी दूर है कार के लिए। गनीमत है, ट्रेन वक्त पर आ गई, आपका सफर अच्छा रहा न ? मैंने अखबार में कुछ पढ़ा था, मैं जानती हूं, आप किस काम पर विशाखापट्टनं जा रहे हैं। काश, मैं भी आ पाती।"

"तो आइये···"

"अगर मैं भी आपकी तरह स्वतन्त्र होती तो आ ही जाती, स्त्रियां भारत में उतनी स्वतन्त्र नहीं हैं, खैर, खाना वगैरह···?"

"फल-वल साथ लाया हूं···"

"खैर, आप उनको बाद में खाना, मैं साथ खाना लायी हूं। आइये।"

निरंजन अपने डिब्बे की ओर जाने में हिचक रहे थे। वे फर्स्ट क्लास से नहीं जा रहे थे। एक खानदानी महिला को, कैसे तीसरे दर्जे में ले जायें।

"मगर···"

"डिब्बे में नहीं, आगे रेस्तरां है···" पार्वती ने कहा, "पास ही है, आइये।"

वहां एक मेज रिजर्व थी, और उस पर काफी भोजन रखा हुआ था। उसी तरह का भोजन जिसे उन्होंने कुछ दिन पूर्व उनके घर खाया था। साथ एक नौकर भी था। रईसी ठाट।

"आप आराम से खाना खाइये, यहां गाड़ी काफी देर ठहरती है। मैं खा चुका हूं, मैं आपको खाना परोसूंगी।"

"आपके बाबू जी ठीक हैं न, प्रसाद ?"

"सब ठीक हैं।"

"कहां हैं ?"

"इस समय तो घर में ही हैं। भाई तो यहां आपसे मिलने आना भी चाहते थे, लेकिन ऐन वक्त पर उनको काम लग गया, आपकी वापसी आयेंगे, हमें तार देंगे न ?'

"क्यों व्यर्थ कष्ट उठाती हैं ?"

"कष्ट ? यह स्टेशन होने को तो बड़ा है, पर खाना ऐसा है, कि··· खैर···"

"निरंजन खा कम रहे थे और पार्वती को देख अधिक रहे थे। उनका मन आश्चर्य और प्रफुल्लता में उफन रहा था। उनको लग रहा था जैसे वे मंजिल पर आ गये हों—उनकी मंजिल आ गई हो। उन्होंने अपने पत्र में कहीं इशारा भी न किया था कि वह उनसे मिले, इसलिए जब वह स्वयं उनसे मिलने आयी तो एक प्रकार के सपनों के सागर में गोते लगाने लगे। यह शिष्टता और औपचारिकता मात्र नहीं थी।

खाना समाप्त हुआ, तो पार्वती उनको उनके डिब्बे तक छोड़ने आयी। हाथ जोड़कर नमस्कार किया। निरंजन को लगा कि उन हाथों को पकड़कर चूम ले—लेकिन, यह कम्बख्त गाड़ी बिगड़ क्यों नहीं जाती? क्यों नहीं, यहीं और खड़ी रहती? और जब गाड़ी हिली, तो वे झटका लगाकर उसमें सवार हुए। गाड़ी चली तो धीरे-धीरे पार्वती ओझल हो गई। और उनके मन में ऐसे चित्र बनने लगे, जिनके आगे-पीछे, बीच में, पार्वती ही पार्वती थी। वे तन्मय में थे। उन्मत्त में।

।। चौदह ।।

निरंजन विशाखपट्टनं पहुंच कर भी, नशे में थे। बहुत कुछ सोच कर आये थे, पर अपने कमरे में जो आये, तो बहुत देर तक वहां से निकलने को ही जी न चाहा। शाम हो गयी थी।

विशाखपट्टनं का शहर जगमगा रहा था। वह पहाड़ी जिस पर उनका विश्वविद्यालय था, चांदनी से पोता-सा लगता था। धूल रंग के मकान भी दूर से साफ दिखाई दे रहे थे, और पास के समुद्र की सतह पर झिलमिलाती चांदी की परत-सी थी। विश्वविद्यालय में कितने ही और भवन बन गये थे। वह जगह, जहां लाल-लाल छोटे कंकड़ थे, अब छोटे-छोटे मकानों से भरा था। पास ही पहाड़ की ढलान पर जहां कभी पुराने

जमींदारों के महल थे, अब बहुत से नये ढंग के आधुनिक घर आ गये थे। सुहावना दृश्य था।

शहर क्या मकानों में होता है? बड़े-बड़े मकान क्या हमेशा इसकी बढ़ती सम्पन्नता के सूचक होते हैं? वह इलाका—बन्दरगाह के पास, जो निरंजन का चिर-परिचित था, उसी तरह था, जिस तरह वे उसे छः-सात साल पहले छोड़ गये थे। कोई खास परिवर्तन नहीं, सूखी, सिकुड़ी, आधी रात को घूमने वाली अधेड़ ऐंग्लो इण्डियन औरतें, कुत्तों के संग घूमने-फिरने वाले नंग-धड़ंग बच्चे। तंग गलियां। कहीं छोटे-छोटे मकान, तो कहीं-कहीं स्कूलों की ऊंची-ऊंची अट्टालिकाएं, मजदूर लोग, और उनके भरोसे जीने वाली गन्दी गरीब औरतें। विशाखपट्टनं का बन्दरगाह बढ़ गया था, और भी बढ़ रहा था, पर यह इलाका न बदला था, ऐसा लगता था जैसे छोटे बीमार दिल पर बहुत भारी जिस्म का बोझ डाल दिया गया हो।

वे विश्वविद्यालय के अपने मित्रों से मिल सकते थे, पर मिलना न चाहा। सभी एक ढांचे में ढले से लोग, नौकरी के पीछे अच्छी भली जिंदगी कुर्बान करने वाले 'जबानी' आदर्शवादी। बड़े-बड़े विचारों को उगलने वाले, खोखली जिन्दगियों के लोग, निरंजन को आकर्षित न करते थे। क्या सीखा था वहां? शायद कुछ नहीं। किसको क्या गुरु-दक्षिणा दें?

वे सुन चुके थे। विश्वविद्यालय में वातावरण भी अजीब था, न अध्ययन का वातावरण, न अध्यापन का वातावरण ही। अवकाश प्राप्त वर्ग के साधन सम्पन्न विद्यार्थी और उनका शैक्षणिक विलास, यही तो विश्वविद्यालय है, यह कोई सान्त्वना नहीं है, भ्रम ही है कि और विश्वविद्यालय इससे भिन्न नहीं हैं।

निरंजन ने उसी होटल में भोजन किया, जहां कभी-कभी वे अपने विद्यार्थी काल में किया करते थे। होटल बिल्कुल न बदला था। मालिक भी नहीं, और वह उन्हें पहचानता भी था। लेकिन उस होटल के पास एक गगनचुम्बी आधुनिक होटल बन गया था। परन्तु छोटे होटल का मालिक निश्चिन्त था।

"साहब जो मेरे यहां आते हैं, इस ईंट-पत्थर के ढेर में क्यों जायेंगे?

न ईंट ही खायी जाती है, न फर्नीचर ही···" वह मालिक हंसा।

निरंजन ने सोचा कि वर्ग संघर्ष हो तो कैसे हो, जब हर कोई अपने वर्ग में सन्तुष्ट हो।

वे चलते-चलते पहाड़ी की तलहटी में, जहां पिछवाड़े में शहर का बड़ा हस्पताल रह जाता था, और एक तरफ कलेक्टरेट और सामने चांदनी को गले लपेटे नीला समुद्र। उनके पहुंचने तक वहां बड़ के नीचे काफी भीड़ जमा हो गई थी, कोई रात ग्यारह-साढ़े ग्यारह का समय था। कलेक्टरेट में सन्नाटा था। पास के बड़े हास्पिटल की दो-चार खिड़कियों में से रोशनी आ रही थी। यहां भी अन्यथा खामोशी। बड के पेड़ को घेरी हुई-सी पुलिस की जीपें। उनके लेखक साथी, निरंजन को देखकर इस तरह उठे, जैसे तब तक उनकी प्रतीक्षा में बैठे हों। "आप कहां चले गये थे ? हम आपकी खोज में थे।"

"यह शहर मेरे लिए नया नहीं है, स्टेशन के पास एक छोटे होटल में ठहर गया था।"

"हम चाहते हैं कि आप बोलें—सभा में।"

"मगर हमारा ख्याल था कि यह समारोह बिना भाषणों के ही होगा।"

"बिना भाषणों के हमारे देश में कभी कुछ नहीं होता है।"

"भाषण ?"

"हां, दो-चार शब्द।"

"भाषण ही न हो।"

"जी नहीं, मनोरंजन का भी कार्यक्रम है।"

बातें चलती रहतीं, यदि इस बीच पीटर मेक्स की रोशनी में शोर करती गाती, नाचती रंग-बिरंगे कपड़े पहने स्त्रियों की टोली न आती। निरंजन उस ओर देखने लगे। उनको समारोह का कार्यक्रम न दिया गया था। इसलिए वे आश्चर्य में थे, क्या समारोह के कार्यक्रम का यह भी एक अंग है ? इसमें भीड भले ही जमे, पर यह उनकी अभिरुचि के अनुकूल न था।

लेखक वृन्द ने उस टोली की अगवानी की। टोली के बाद, एक अधेड़

स्त्री लड़खड़ाती चली आ रही थी। हाथ की अंगुलियां गायब। पैर की अंगुलियां गायब। चेहरे पर चिकनी-चिकनी, फूली-फूली शिकनें—कोई कोढ़ी। निरंजन का आश्चर्य और भी बढ़ा।

इतने में लेखक वृन्द के मुखिया ने संकेत किया, और वे स्त्रियां बड़ के नीचे घेरा बना कर नाचने लगीं। और वह कोढ़ी स्त्री पास ही, एक पत्थर पर बैठ गई। विचित्र नृत्य, विचित्र वायुमण्डल।

मुखिया ने कहा, "अब हमारा समारोह प्रारम्भ होता है। आधी रात हो रही है। हम आपका समय ज्यादह नहीं लेंगे। हमें जो कुछ कहना है, उसका सारांश इस पुस्तक में है, जिसका आज विमोचन हो रहा है। विमोचनकर्त्री है, आज की मुख्य अतिथि श्रीमती पुनम्मा···" उस व्यक्ति ने पत्थर पर बैठी कोढ़ी स्त्री की ओर इशारा किया। सब चौंके। निरंजन स्तब्ध से रह गए। असाधारण कार्यक्रम की तो वे कल्पना कर सकते थे, पर वह इतना असाधारण और चौंकाने वाला कार्यक्रम होगा, इसकी उन्होंने कल्पना न की थी।

लेखक महोदय ने कहा, "पुन्नम्मा, हमारे वर्तमान कोढ़ खाये समाज की प्रतिनिधि ही नहीं, उसका जीता-जागता चित्र भी है। यह सामाजिक रूढ़ियों की शिकार ही नहीं, उसके निर्मम दण्ड विधान की भी शिकार है, जो निर्दोष होते हैं, उनका दोष यही है कि वे शोषित वर्ग में पैदा होते हैं। जब शरीर को हाट में रख दिया जाता है, तो वह भी मांस की तरह सड़ जाता है। लेकिन उसको रखा क्यों जाता है ? क्यों पुन्नम्मा जैसी स्त्रियां व्यर्थ बलि हो जाती हैं। कब तक बलि होती रहेंगी ?

" छुटपन में शादी हुई। खानों में काम करने वाले पति की एक्सिडेंट में मौत हो गई, रिश्तेदारों ने छोड़-छाड़ दिया। जवानी थी, और शायद जवानी के सिवाय कुछ भी न था, और सामाजिक नियम कुछ ऐसे कि वह फिर शादी नहीं कर सकती थी। कोई पढ़ाई-लिखाई नहीं कि कोई काम-धन्धा कर सकें। मर जाने के लिए साहस नहीं, जीने के लिए साधन नहीं। वह अकेली नहीं है, वह उन सब की प्रतिनिधि है, जो मूक हो, अपने अमूल्य शरीर को, शोषकों के शोषण के लिए चार-पांच रुपये रात के हिसाब से बेच रही है। और जगह समस्याएं राजनीतिक हैं, आर्थिक हैं, हमारे देश में

ये सब समस्याएं मिल-जुल कर, एक विकराल सामाजिक समस्या बनी हुई हैं। हमें समाज में सुधार लाना होगा। इसके लिए न शासकीय शक्ति की उतनी आवश्यकता है, न सैनिक शक्ति की ही। आवश्यकता है नवचेतना की। और उस नवचेतना को पैदा करने के लिए ही हम आप इनके कर कमलों द्वारा इस पुस्तक का विमोचन करवा रहे हैं।

"यह पुस्तक कविता की है,पर न इसमें चांद-सितारे हैं,न ऋतुओं की परिक्रमा ही। इसमें आपके और हमारे अनुभव हैं। आकांक्षाएं हैं, तपन है, जलन है, यह हमारी उतनी ही है जितनी कि आपकी। शीर्षक ऐसा है, जिसमें बिलकुल अकविता की ध्वनि आती है—"उठो और जागो!" यह उसी प्राचीन उद्बोधन का अनुवाद है, जिसे हम सदियों से सुनते आये हैं, पर जिसके अनुसार हम चल नहीं पाये हैं—'उत्तिष्ठित जागृत···' "

उन्होंने पुस्तकों का एक पैकेट उस स्त्री को दिया। उसको सहारा देकर उठाया और उससे पैकेट पर लगा धागा चाकू से कटवाया। यही समारोह था। तागा टूटते ही, लाल-लाल रंग वाली पुस्तकें इस तरह गिरीं जैसे खून के लोथड़े गिर रहे हों। करतल ध्वनि इतनी हुई कि ऐसा लगा कि एक क्षण के लिए आधी रात के समय कोई तूफान आ गया हो।

लेखक ने निरंजन से "दो शब्द कहने के लिए कहा। वे उस सभा में अकेले थे, जो शायद सबसे अधिक शिक्षित थे, सबसे ऊंचे, सम्माननीय पद पर थे, और उस वृन्द के सक्रिय संवेदकों में थे।

"मैं अपने भाई के वक्तव्य से प्रभावित हुआ हूं। उनका विश्लेषण भावपूर्ण तो है ही,बुद्धिमत्तापूर्ण भी है। मैंने आज उनसे कुछ सीखा है। हमारी समस्या उतनी राजनीतिक और आर्थिक नहीं है,जितनी कि सामाजिक है। पश्चिम में वर्ग हैं, पर वे तरल हैं, जमे-जमाये नहीं हैं, जिस तरह के हमारे समाज में हैं। न वहां की समस्यायें धर्म के द्वारा उस तरह उलझा दी गई हैं, जिस तरह कि हमारे यहां···" निरंजन बोल रहे थे। पर उनको लग रहा था कि उनके श्रोता उनको ठीक तरह समझ नहीं पा रहे थे।

"हमें तथाकथित रूढ़िबद्ध धर्म का, जिसने कुरीतियों को समर्थन दे रखा है, उन्मूलन करना है। भारतीय समाज जिस तरह विवाह आदि के बारे में उलझा हुआ है, संसार का कोई और समाज नहीं है। परिवार के

वारे में हम इस तरह आसक्त हैं, कि हम स्वयं अपनी प्रगति के पथ में वाधा वने हुए हैं। धर्म और जाति के नाम पर जो शोपण होता है, वह हमें हटाना होगा, और परिवार के नाम जो स्वार्थ प्रदर्शन और स्वार्थ का प्रतिपादन होता है, वह कम करना होगा। इस तरह वर्ग संघर्ष की भावना को नई दिशा मिलेगी, और हो सकता है कि विना हिंसा के ऐसे वहुत कुछ सुधार सम्भव हैं, जो अन्यथा कालान्तर में हिंसा द्वारा साध्य हैं…"

इस निष्कर्षात्मक चिन्तन को वे कहीं विज्ञ मंच से व्यक्त करते, तो शायद इसकी प्रतिक्रिया भिन्न होती, पर वहां ये विचार संभवतः एक हवा का झोंका मात्र वन कर रह गये।

"पुस्तकें इसलिए लिखी जाती हैं, ताकि उनके द्वारा नवचेतना जागृत हो, वह साहित्य निरर्थक है जो मात्र मनोरंजक है। यह पुस्तक समाज में ही नहीं, साहित्य में भी एक नया पथ प्रशस्त करेगी, ऐसी मेरी आशा है। नमस्कार।"

मन्द करतल ध्वनि ने मानो उनका अनुमोदन किया।

तदनन्तर नाच प्रारम्भ हुआ, और उस नाच में उपस्थित लोग भी सम्मिलित हुए, यदि नियम-वियम की वात न होती, तो शायद पुलिस वाले भी उस उल्लास में शामिल होते।

यह समारोह काफी देर तक चलता रहा, इसकी समाप्ति के वाद, यह कई दिन चर्चित भी रहा।

निरंजन के घटनाशून्य जीवन में, यह शायद एक घटना थी।

॥ पंद्रह ॥

प्रसाद से उनको कुछ-कुछ निराशा हुई थी, पर प्रसाद के कारण निरंजन का एक ऐसी स्त्री से परिचय भी हुआ था, जो वे सोच रहे थे, उनके जीवन

में, कार्य में, उनकी बहुत मदद कर सकती थी। प्रसाद यदि उतना उत्साह दिखाते, जितना कि वे इंग्लैंड में दिखाया करते थे, सम्भव है वे इस लेखक वृन्द में भी शामिल न हो पाते। वे बिना उसके दिग्दर्शन के ही, एक ऐसे पथ पर चले जा रहे थे, जो उन जैसे बुद्धिजीवियों के लिए, सम्भव ही नहीं, उचित भी है।

घटनाशून्य जीवन में भले ही घटनाओं का तांता न बंधा हो, पर उनको लग रहा था, जैसे उनकी मानसिक रिक्तता कम हो रही हो। शुरू-शुरू में सब धुंधला लगता था, होते-होते रास्ता साफ होता गया, उनको अपने जीवन में एक प्रकार की सार्थकता दिखाई देने लगी थी। वे उस समय प्रफुल्लतापूर्ण मूड में थे।

वे विशाखपट्टनं में दो-चार दिन रहना चाहते थे, वे उस प्रांत में भी भ्रमण करना चाहते थे जहां उग्रवादियों ने उपद्रव मचा रखा था, पर जा न पाये। उनके वृन्द में से यदि कोई जाता तो साथ चले जाते, उनमें से कोई भी न गया।

वे अगले दिन ही हैदराबाद के लिए रवाना हुए। इस बार भी उन्होंने दिन की ट्रेन ही पकड़ी। न मालूम क्यों सपने देख रहे थे कि पार्वती आयेगी, दो-चार मिनट बात होगी। चाहे वे कुछ भी सोचें, पर जब वे पार्वती के बारे में सोचने लगते, तो निराशापूर्ण विचारों में भी सहसा उषा की लाली, ताजगी आ जाती। विशाखपट्टनं से वे उसकी ओर खिंचे से चले जाते थे।

अगर पार्वती उस समारोह में होती, तो क्या सोचती? वेश्याओं का नाच, शायद उनके मूल्यों के अनुसार, भद्दा लगता। कहीं सार्वजनिक रूप से क्रांतिकारी ऐसे समारोह करते हैं? वह सोचती, शायद न भी सोचती, कोई मन्त्री आता, तकरीर झाड़ता, तो वह और भद्दा लगता। नितान्त औपचारिक, अशिष्ट। वह ऊब जाती। हमारे विचार किस तरह हमारे वर्ग के मूल्यों से अनुशासित होते हैं? बहुत महत्व रखती है यह बात कि हम कहां, किस तरह के घराने में पैदा हुए हैं। हम सम्पत्ति को ही विरासत में नहीं पाते, बल्कि मूल्य भी पाते हैं। उच्च वर्ग के लोग, भले ही क्रान्ति के नारे लगायें, पर जब कसौटी का समय आता है, तो खिसक जाते हैं। प्रसाद

गये ? मैं ? मैं धनी न सही, हूं तो उच्च वर्ण का ही। उसी जाति का जिसके खिलाफ हैं। पार्वती है। मेरे विचार भी क्या ऐसे हैं ? मेरी क्या कसौटी है?

जो आक्रांत हैं, शोषित हैं, उनके लिए क्रांति करना एक बात है, और उनके लिए कुछ और जो जन्म से ही व्यवस्था के अंग हैं। मगर उच्च वर्ण वाले क्रांति के लिए तड़पते हैं, जद्दोजहद करते हैं, तो उनके लिए यह बलिदान ही है। पार्वती के लिए ? मेरे लिए ? नहीं, अभी हमने बलिदान ही क्या किया है ?

इस तरह के विचार निरंजन के मन में उठ रहे थे, और गाड़ी धड़ा-धड़, उस जंक्शन की ओर ले जा रही थी, जहां उनकी जाते समय, पार्वती से मुलाकात हुई थी।

गाड़ी का सफर भी अजीब है। सभी पहाड़ एक से लगते हैं। सभी शहर भी आते हैं, जाते हैं, फिर कुछ अस्पष्ट-सा ही रह जाता है। अगर मनुष्य का दृष्टिकोण पक्का हो गया हो, तो वह चाहे कुछ भी देखे, एक ही तरह के निष्कर्ष पर पहुंचता है, फिर अधिक सोचने से क्या फायदा ? शायद यही सोचकर, निरंजन ने एक किताब ले ली, और उसमें भी वे अपने को न रमा सके।

रात काफी देर जागे थे, इसलिए एक-डेढ़ घंटे बाद बैठे-बैठे ही, डिब्बे के भीड़-भड़क्के में, शोर-शराबे में ऊंघने लगे। कभी आंख खुलती, तो सन्देह होता कि वह जंक्शन गुजर तो नहीं गया है। कई बार पूछा पर जब वह जंक्शन पास आने लगा तो आंखें धोकर बैठ गये। कहीं ऐसा न हो कि स्टेशन आये और वे सोते रह जायें, और गाड़ी वहां से गुजर भी जाये। अगर पार्वती आयी, और उन्होंने मुझे न पाया तो ? लेकिन आयेंगी ही क्यों ? पहले क्यों आयी थीं ? मैंने उनको आने के लिए तो कहा नहीं था ? ...उनकी उत्कंठा बढ़ती गई।

स्टेशन आया। वे झट उतरे, और रेस्तरां की ओर बढ़े। वे लालची आंखों से चारों ओर खोज रहे थे, लेकिन कहीं भी पार्वती न दिखाई दी थीं। उनकी बेचैनी बढ़ी, शायद आ रही हों। कहीं रास्ते में कोई एक्सिडेंट हो-हा गया हो। मोटरें, लॉरी टूट सकती हैं, उनकी कार भी टूट सकती है। क्या नहीं हो रहा है यहां ? लेकिन कोई योजना नहीं, कुछ नहीं...उनकी

घबराहट बढ़ी।

अगर मेरी वजह से उनको कुछ हो गया तो ? वे अवश्य आतीं, वे अनुमान कर सकती थीं, कि मैं आ रहा हूं, तो पहली बार क्या केवल शिष्टता ही थी ? तो क्या शिष्टता एक ही बार दिखाई जाती है ? नहीं वे जरूर यहां आने के लिए निकली होंगी। वे कहीं हैदराबाद तो नहीं गईं ? अगर कोई ऐसा इरादा होता तो वे मुझे बताती न ? नहीं, जरूर कुछ न कुछ हुआ है। वे उस घबराहट में अपने को कुछ-कुछ दोषी भी मानने लगे थे।

इस खींचातानी में गाड़ी का समय हो गया, और वे अब भी फाटक की ओर देख रहे थे कि पार्वती अब आयेंगी, तब आयेंगी, लेकिन वह दिखाई नहीं दीं। उनको हैदराबाद जाना था, लेकिन निरंजन ने तुरंत अपना निश्चय बदल लिया। वे दौड़ते-दौड़ते अपने डिब्बे के पास गये, और चलती गाड़ी में ही अपना सामान उतार लिया।

वे लम्बी-लम्बी सांसें लेते हुए स्टेशन से बाहर गये, कुछ देर इधर-उधर देखते रहे। उनका मन कह रहा था, कहीं अवश्य कुछ हुआ है, नहीं तो पार्वती अवश्य आतीं। मैंने भले ही साफ-साफ न कहा हो, पर वे क्या अनुमान नहीं कर सकतीं कि मैं उन पर 'मुग्ध' सा हूं। उनका आना, पत्र लिखना महज शिष्टता नहीं हो सकती। वे भी, हो सकता है, मुझे चाहती हों। जब सम्बन्ध इस प्रकार के हो जाते हैं, तो बिना बातों के भी, मन ही मन, चुपचाप एक दूसरे को बहुत कुछ कहते हैं।

कुछ देर प्रतीक्षा के बाद, जब पार्वती का कहीं कुछ पता न लगा, तो वे बस स्टैंड की ओर चल पड़े। इस तरह बिना कोई सूचना दिये चला गया तो वे क्या सोचेंगी ? वे भी तो बिना कुछ कहे, स्टेशन आ गयी थीं। यही तो सोचेंगी, कि मैं उन पर पगलाया हुआ हूं, यही तो मैं कहना चाहता हूं, मेरा उनके यहां यकायक पहुंच जाना यही तो बतायेगा, जो हजार बातें, सैकड़ों बार कहे जाने पर भी न बता पायेंगी। अब जब चले हैं, तो सोचने की क्या बात है ? यह सोच वे फुर्ती से बस स्टैंड की ओर चले।

वे अभी स्टेशन के अहाते से ही निकले थे कि पार्वती कार में आती दिखाई दीं। वे उनको देखकर उतरीं। निरंजन ने उनकी पीठ थपथपाकर कहा, "तो आप आ ही गईं ?"

पार्वती मुस्कराती खड़ी रहीं, जैसे उनको अपनी पीठ थपथपाना पसन्द आ रहा हो।

"और आप ?"

"हम तो आपसे मिलने जा रहे हैं ?"

"हम भी आपसे मिलने आ रहे थे।"

"हूं," दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़कर मुस्कराये। वे जाने कब से हाथ पकड़ने की सोच रहे थे, और आज हाथ पकड़कर निहाल हो गये थे।

"आइये, बैठिये···" पार्वती ने कार में अपनी सीट पर ही बिठा दिया। सिवाय ड्राइवर के कार में कोई और न था।

"गाड़ी चली गई क्या ?"

"हां, क्या आपकी कार में गड़बड़ी हो गई थी ? या कहीं कुछ हो-हा तो नहीं गया था ?"

"नहीं, नहीं, कुछ भी तो नहीं हुआ, आप बेफिक्र रहें। गाड़ियां तो अक्सर देरी से आती हैं, शायद आप जब उनमें सवार होते हैं, तो वक्त से पहले आती हैं।" पार्वती परिहास कर रही थीं। और निरंजन को ऐसा लग रहा था मानो वे कोई संगीत सुन रहे हों। वे हंस दिये।

"आपका वक्त क्या है ?"

"पौने बारह, गाड़ी वक्त पर ही तो आई थी।" निरंजन ने कहा।

पार्वती ने घड़ी देखी, और ताज्जुब और अफसोस एक साथ प्रकट करते हुए उन्होंने कहा, "लेकिन मेरी घड़ी में तो ग्यारह बज रहे हैं, आपकी घड़ी ठीक है ?"

"घड़ी ठीक है, गाड़ी ठीक है, मैं ठीक हूं, और आप···" निरंजन सीट पर उनके समीप कुछ सरके।

"गजब हो गया, मैं सोच रही थी कि मैं वक्त पर पहुंचूंगी, और अगर आप उतरते न तो मैं आपको शायद देख भी नहीं पाती।"

"मैं तो बेचैन हो गया था। मन कहता था कि आप जरूर आयेंगी, और ठीक ही कहता था, और आप आयीं ही, क्या इस बार भी शिष्टता दिखा रही हैं ?"

पार्वती मुस्करा दीं। उस मुस्कराहट में स्त्री-सुलभ लज्जा और संकोच

था। कुछ बोली नहीं। निरंजन ने बात बदलनी चाही, "आपने घड़ी ठीक क्यों न कर ली?"

"कैसे ठीक करती? घर मे रेडियो भी तो नही है, सब हैदराबाद भेज दिये गये है, कभी ड्योढ़ी पर चौकीदार घंटा बजाया करता था, वह भी अब नहीं बजता…।"

"यानी आपके घर मे—गाव मे घड़ी रुक गई है?"

"गाव मे ही क्या देश मे ही रुक गई है।"

निरंजन ने इस प्रकार के उत्तर की अपेक्षा न की थी। और जब वह मिला तो वे खुश हुए। संयोग से कार ने झट मोड़ लिया, और वे उन पर जा पड़े। स्पर्श में इतना सुख है, और जब आखें खुशी-खुशी कुछ पूछती-सी लगती हों, तो वह खुशी और भी बढ़ जाती है।

"खाना खाया कि नहीं आपने?"

"शिष्टता दिखाऊं, या सच कहूं?"

"सच।"

"नहीं खाया।"

"मैं लायी हूं।"

"तो यहीं पिकनिक हो जाये, कहीं पेड़ के नीचे, या कार मे ही।"

"जैसी आपकी मर्जी।"

"तो आइये, बाहर चलें, उस पेड़ के नीचे, कार रोकना।"

कार रोकी गई।

"प्रसाद घर मे है कि नहीं?"

"नहीं है, हैदराबाद मे हैं।"

"अच्छा।"

पार्वती टिफिन कैरियर वगैरह उतारने लगी। निरंजन ने उसके हाथ से कैरियर ले लिया।

"दरी नहीं लायी।"

"कोई बात नहीं।"

"भगवान की दी हुई मिट्टी है न—छाह है।"

वे दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़कर, टिफिन कैरियर झुमाते-झुमाते

एक पेड़ की आड़ में चले गये। और ड्रायवर ने मुंह मोड़ लिया।

।। सोलह ।।

कार गांव के पास जा रही थी कि मन्दिर के पास उन्होंने भीड़ देखी। निरंजन का कुतूहल जगा, "क्या कोई फिर मारा गया है? इस वार क्या कोई चमार मरा है?"

"नहीं, वह देखिये न? पोस्टर लगा है।" पार्वती ने निरंजन का ध्यान मन्दिर की चारदीवारी पर चिपके एक पोस्टर की ओर खींचा। "पुजारी चोर है।"

"वही न जिसको पीटा गया था, जब मैं यहां था?"

"हां, पीटने वालों को पहले ही पता लग गया था कि वह उनको फंसा रहा है। उन्होंने धुन दिया।"

"हुआ क्या था?"

"अब सच पता लगा है कि पुजारी ने स्वयं मन्दिर के गहनों की चोरी और जाकर पुलिस में शिकायत कर दी कि गहनों की चोरी हो गयी है। पुलिस ने भी सोचा कि यह उन्हीं लोगों की करतूत है, जो यहां डकैतियां करवा रहे हैं।"

"फिर···?"

"जब तहकीकात हुई तो मालूम हुआ कि शिकायत करने वाला ही खुद चोर था।"

"अब वह कहां है?"

"जेल में। कल ही भेजा गया है। वावूजी इसी सिलसिले में आये हुए हैं।"

"तो क्या वे यहीं हैं?"

"हां।"

निरंजन कुछ निरुत्साहित हुए। वे जाने क्या-क्या सपने देख रहे थे। उन्होंने अपना ही मन बंटाने के लिए पूछा, "क्या इसी पुजारी का लड़का हैदराबाद में है—शास्त्री ?"

"हां, हां, आपको कैसे मालूम ?"

"वे मेरे विभाग में ही काम करते हैं।"

"अच्छा ? इस पुजारी ने उसके नाम हैदराबाद में मकान भी बनवा लिया है। कल तो वे यहीं थे···"

"यहीं ?"

"हमारे यहां आये थे, बाबूजी से विनती कर रहे थे कि वे जोर लगा कर उनके पिता को छुड़वा दें। बाबूजी ने कोशिश भी की, पर मामला इस तरह उलझा हुआ है कि हम कुछ कर ही नहीं सकते।"

"करने की जरूरत ही क्या है ? जो किया है, उसको भुगतें। धर्म के नाम पर इन लोगों ने क्या नहीं किया···?" निरंजन के मुख से अप्रिय सत्य निकल ही गया।

"आपसे मुलाकात हो ही गई, और आपको मैंने सुरक्षित आपके गांव पहुंचा भी दिया, अब इजाजत हो तो मैं वापस चला जाऊं ?"

"इतनी दूर आये हैं, एक-दो दिन ठहरिये न।"

निरंजन को यह निमंत्रण पाकर बड़ी खुशी हुई यानी पार्वती इसके अलावा कुछ और कहती, तो शायद उनको रंज होता।

"हम भी हैदराबाद जा रहे हैं, साथ आइए, अगर आपको कोई एतराज न हो।"

"आप कार में जा रही होंगी, साथ बाबूजी भी होंगे।"

"तो क्या ? वे सब जानते हैं।"

"जानते हैं ? क्या तुमने कुछ बताया था ?" निरंजन के मुख से अनायास 'तुम' निकल गया था, और इसका उनको खेद भी न था।

"बताने को है ही क्या ?" पार्वती हंस दी, जैसे निरंजन ने घनिष्ठता बढ़ाने के लिए कुछ भी ऐसा न किया हो, जिसके बारे में बुजुर्गों को कुछ बताया जा सके।

"मुझे जरा जल्दी जाना है।"

"आप तो गांव में काम करना चाहते थे न ? देखिये तो यहां होता क्या है ?" पार्वती ने कहा।

"हूं।"

"हम लोग लॉरी के साथ जायेंगे, आपको तकलीफ भी होगी, जैसी आपकी मर्जी।" पार्वती ने कहा। निरंजन समझ नहीं पा रहे थे क्यों एक सांस में वह निमन्त्रण दे रही थी, और क्यों दूसरी सांस में, उनके जाने पर यूं आनाकानी व्यक्त कर रही थी।

बातें वे रास्ते भर करते आ रहे थे, पर वे खतम नहीं हो रही थीं, शायद खतम भी न होतीं, यदि उनका महल न आ जाता। ड्योढ़ी पर पुलिस वाले थे, और ऐसा लग रहा था जैसे वहां वे स्थायी गश्त पर हों। पैरों की पट्टी और जूते निकाल कर, चटाई फैला कर वे आराम कर रहे थे। कार के आते ही उन्होंने चौकस होने की कोशिश की। पर इधर-उधर देख कर वे यथापूर्व आराम करने लगे। ड्योढ़ी भी सुनसान लगती थी। चमगादड़ चीं-चीं कर रहे थे।

कार के रुकते ही पार्वती उतरी और निरंजन के उतरने के लिए दरवाजा खोले रही। निरंजन ने सोचा कि तुरत उनको बाबूजी के सामने हाजिर किया जाएगा। लेकिन पार्वती उनका बैग लेकर, उनके साथ उसी कमरे की ओर चलने लगी, जहां वे पिछली बार ठहरे थे। दो-तीन कमरों में से वे गुजरे। सब खाली और बन्द। कहीं कोई टूटी-फूटी कुर्सी भी न थी, न फर्श पर कालीन ही। सब हटा दिया गया था। वे उस कमरे में गये। वहां भी एक खाट थी और एक मेज, और अलगनी पर कुछ साड़ियां रखी हुई थीं। उनको आश्चर्य हुआ।

"यह अतिथि का कमरा नहीं है, मेरा है।"

"हूं, सारा मकान खाली कर दिया गया मालूम होता है..."

"जी हां, मगर अब भी गुसलखाने में पानी है। हाथ-मुंह धो लीजिए। आराम कीजिए।"

"अच्छा, मगर हमें अब जाने दो।"

"अगर आप जाना भी चाहें, तो कोई गाड़ी नहीं है इस समय। रात

को आठ बजे एक है, तब चले जाना।" पार्वती व्यवहार में, परिचय की वृद्धि के साथ शिष्टता की, विनय की मात्रा भी कम होती जा रही थी।

'मैं देख आऊं कि बाबूजी क्या कर रहे हैं।" पार्वती ने कहा।

"तो क्या मुझे भी उनके दर्शन करने होंगे ?"

"कोई जरूरत नहीं, वे सो रहे होंगे। हां, अगर आप चाहें तो उनको देख सकते हैं—जब वे उठ जायें। वे पुराने ढर्रे के आदमी हैं। एक जमाना था कि उन्हीं के घर में, उन्हीं के खर्च पर, उनके कितने ही अतिथि, कई दिन रह जाते थे, और वे उनको देखते भी न थे, न अतिथि ही उनको देखते थे। नौकरों के द्वारा सब बातचीत हो जाती थी, खैर, मैं अभी आयी···" पार्वती यह कहती-कहती बरान्डे में गई।

निरंजन कुरते की बांहें ऊपर करके, खिड़की के किवाड़ पकड़ कर बाहर देखने लगे। इतना बड़ा मकान, इतना बड़ा आहाता और कोई नहीं, कुत्ते भी नहीं। न बत्तखें ही। जब वे पिछली बार आये थे, तो वे कां-कां करती पहरा देती लगती थीं। हो क्या गया ? हिंसा से और कुछ होता हो या न होता हो, उन लोगों में भय आ जाता है, आतंक छा जाता है, जिनके विरुद्ध हिंसा की कार्यवाही की जाती है। वे समझने लगते हैं। उनकी निरंकुशता कम हो जाती है, वरना इन पुराने तानाशाहों की तानाशाही बदस्तूर जारी रहती, भले ही उनको लगाम में रखने के लिए दसियों कानून पास कर दिये गये हों। निरजन सोच रहे थे कि पार्वती इतने में आकर उनके पीछे खड़ी हो गई। "इतनी जल्दी आ गई।"

"वे सो रहे हैं।"

"मकान खाली है, क्या इसे बेचा जा रहा है ?"

"कौन खरीदेगा इसे ? कोई कोई खरीदने वाला मिल भी जाये, तो बाबूजी को यह गवारा नहीं है, कि कोई इस मकान में कभी रहे, जिसमें उनका खानदान रहा था।"

"मकान खाली भी तो नहीं रखा जा सकता।"

"रखा भी नहीं जायेगा। यहां जितनी सम्पत्ति है, उनको लेकर ट्रस्ट बना दिया गया है। हम यहां एक स्कूल खोलना चाहते हैं

"एक है न ?"

"नहीं, लड़कियों के लिए यहां कोई स्कूल नहीं है।"

"दान का दान, नाम का नाम। क्या यह प्रसाद का सुझाव है ?"

"नहीं तो, वे सारी आस-पास की जमीन को प्लॉट बनवा कर, बिकवा देना चाहते थे। बाबूजी का ही यह ख्याल है। हम न रहे तो कम से कम खानदान की निशानी तो रहे—यह उनका ख्याल है।"

"हूं।"

"आप गांवों में काम करना चाहते हैं न ?"

"गांव में काम करना चाहता हूं, लेकिन अभी लड़कियों के बीच नहीं।" निरंजन ने मुस्कराते-मुस्कराते पार्वती का हाथ पकड़ लिया।

"मैं करना चाहती हूं।"

"बधाई है ! जो हम नहीं कर सकते, तुम ही करो। तो तुम यहीं रहोगी ?"

"हां, शायद रहना होगा। स्कूल की देखभाल मैं ही करूंगी।"

"पढ़ी-लिखी स्त्री के लिए इससे अच्छा और क्या काम हो सकता है। बधाई है।" निरंजन ने पीठ थपथपाई। पार्वती ने कुछ न कहा। वह एक अप्रकट आवेश के कारण अभिभूत-सी प्रतीत होती थी। बात इस तरह बढ़ती गई, तो वही होगा जो स्त्री-पुरुष में, एकान्त में हो जाता है। अभी शायद वह उस परिणति के लिए तैयार न थी। "आप आराम कीजिए।"

"एक ही तो बिस्तर है, आप कहां···?" निरंजन ने आगे कुछ न कहा। वे भद्दे इशारे करना न चाहते थे।

"मैं चाय-पानी का इंतजाम करूंगी। मैं ही यहां सब कुछ हूं, कोई नौकर चाकर नहीं है। बाबूजी भी उठ जायेंगे। आप आराम कीजिए। अगर आपको बिस्तर पर सोने में आपत्ति हो···"

"स्त्रियों का बिस्तर हमेशा साफ रहता है—बशर्ते···" निरंजन की बातों के स्तर में भी, वासनामय आत्मीयता आ रही थी। पार्वती मुस्करा दी। स्त्रियां अगर बात-बात पर मुस्करायें न तो वे शायद पुरुषों के लिए उतनी गहरी पहेली भी न बनें। वह चली गई।

निरंजन बिस्तरे पर लेट गये। रात की नींद आंखों में न थी, किन्तु वे सो नहीं पाते थे। वे ऊंची छत की ओर देखते, आंखें खोले-खोले ही

सपनों के लोक में खो गये। समय हिरण होता जा रहा था, जाने वे क्या सोचते जा रहे थे।

"चार-साढ़े चार के करीब पार्वती आयी। खुद ट्रे में वह चाय और कलेवा लायी। दोनों पालथी मार फर्श पर बैठ गये। चूंकि मेज छोटी थी। दरवाजा भी बन्द करने की जरूरत न थी। कोई वहां हो तब न। हो तो भी क्या ?"

"तुम्हारे बाबू जी उठ गये ?"

"हां, वे पिछवाड़े में टहल रहे हैं।"

"वे बाहर नहीं जाते घूमने ?"

"कभी जाते थे, आजकल चहारदीवारी के अन्दर ही घूम लेते हैं। उनका पुराना नौकर चौकीदार उनके साथ है।"

"धनी लोग कभी-कभी अपने मकानों में ही कैदी हो जाते हैं।"

"कैदी मकान के ही नहीं, मूल्यों के भी हो जाते हैं।" पार्वती की यह टिप्पणी सुन, निरंजन को आश्चर्य हुआ। उनमें भी, स्त्री मात्र को, इन बातों में 'अचेत' समझने का शायद दुरभिमान था।

इतने सपने देखे थे पर निरंजन ने यह सपना न देखा था कि वे भी कभी इस तरह एक ही कमरे में, इतने पास पालथी मार कर बैठेंगे, और बतियायेंगे। अगर वे सीधे हैदराबाद चले जाते तो क्या यह सुख मिलता, क्या वे जान पाते कि पार्वती का उनके प्रति क्या रुख था। जिस प्रश्न का उत्तर वे कविता करके भी न खोज पाते थे, अब उनकी आंखों के सामने था—'यह पक्का हो गया था कि पार्वती मुझे भी चाहती है, इधर उधर की जल्दबाजी से कुछ का कुछ कर देना अच्छा नहीं है। समय और अवस्था ऐसी है कि अभी धीमे-धीमे चलना ही अच्छा है।' निरंजन ने सोचा।

"अब मैं चलता हूं, गाड़ी पकड़नी है, मैं बस में चला जाऊंगा।"

"मैं छोड़ आऊंगी।"

"नहीं, नहीं, दिन अच्छे नहीं हैं, आपको इतनी रात स्टेशन से अकेला आना होगा।"

"हां," पार्वती ने इस तरह लम्बी सांस ली, जैसे

में बेखबर हो। "अच्छा।"

कार बाहर थी ही। पार्वती फिर निरंजन का बेग ले आयी। और कार में उनके साथ बैठ गई। "अच्छा हुआ, मैं यहां आया, आराम मिला, और आश्वासन भी—जानती हो क्या?"

पार्वती कुछ न बोली। वह लजा गई।

वे बस स्टैंड पर आये, तो पुजारी का लड़का---शास्त्री भी बस में था। उसने उनको देखा। एक तरफ मुंह मोड़ लिया। निरंजन ने भी उससे उस समय बात करने की कोई आवश्यकता न समझी। बस स्टेशन जा रही थी। जाने के वक्त तक, वे पार्वती के साथ कार में बैठे-बैठे बातें करते रहे, जैसे दोनों को एक दूसरे का छोड़ना मंजूर न हो।

बस के छूटते-छूटते, अंधेरा हो गया था। निरंजन बस में बैठकर कार की ओर देखते रहे, और कार भी, जब तक बस अंधेरे में गुम न हो गई, वहीं खड़ी रही।

॥ सत्रह ॥

विश्वविद्यालय में हमेशा कोई न कोई हड़ताल रहती ही है। कभी होस्टल में कुछ है, तो कभी कॉलेज के कैम्पस में कुछ। पर शिक्षा, शिक्षा क्रम के, या उसके माध्यम के बारे में हड़ताल नहीं होती।

निरंजन के विश्वविद्यालय में हड़ताल शिक्षा के बारे में हो रही थी और यह शक किया जा रहा था कि वह उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन पर हो रहा था। निरंजन इसका श्रेय न लेना चाहते थे, न दोष ही। वे इस विषय में प्रारम्भ में तटस्थ से थे। किन्तु बाद में वे हड़ताल के कुछ-कुछ प्रवक्ता से बन गए थे।

हैदराबाद में कभी भी अंग्रेजी का उस तरह प्रभाव या दबाव न रहा

जिस तरह कि ब्रिटिश इंडिया में था। वहां शिक्षा का माध्यम ही उर्दू थी। जो वहां की भाषा तेलुगु है, वह सर्वथा उपेक्षित थी, यद्यपि विद्यार्थियों में तेलुगु-भाषी ही अधिक थे।

इधर, अंग्रेजी के माध्यम में भी, कई वर्गों में शिक्षा दी जाने लगी थी। विद्यार्थी थे, पर उनमें से कई अंग्रेजी में इतने कमजोर थे कि चाहते थे कि सारी शिक्षा तेलुगु में दी जाये। यही नहीं, अंग्रेजी का मोह भी कम हो रहा था। विश्वविद्यालय में ऐसे वर्गों के लोग अधिक संख्या में आने लगे थे जिनका अंग्रेजियत से कोई सम्बन्ध न था। अंग्रेजी को इतनी अहमियत दिया जाना उनको अखरता था।

फिर इस बात को राजनीतिक रंग भी दिया गया। कहा गया कि इस प्रकार आन्ध्र के तटवर्ती लोग तेलुगु के नाम पर अपना प्रभाव विस्तृत करना चाहते हैं। वे एक ऐसे विश्वविद्यालय में अपने पैर जमाने की कोशिश कर रहे थे, जो उनके क्षेत्र में न था। उनका प्रभाव कम करने के लिए, तेलंगाना के लोग बरबस अंग्रेजी के पक्षपाती हो गये थे। इन दोनों पक्षों में तनातनी थी। कई का कहना था कि इस प्रकार का विभाजन विश्व-विद्यालय के अधिकारियों की चाणक्य नीति थी। कुछ भी हो, विश्वविद्या-लय का वातावरण विस्फोटक-सा हो रहा था।

निरंजन घर आ सकते थे। पर घर आने का अर्थ होगा उनका अपने कर्तव्य से विमुख हो जाना। उनको लग रहा था कि सामाजिक कार्य करने की उनको इस तरह चुनौती दी जा रही थी। सामाजिक कार्य करने के लिए किसी विशेष जगह पर जाने की आवश्यकता नहीं थी, इतना काम है कि हर जगह, हर क्षेत्र में है, बस करने वालों की ही कमी है—इस तरह का विचार निरंजन में दृढ़ होता जा रहा था।

एक और बात भी शायद थी—पार्वती हैदराबाद अक्सर आ रही थीं। प्रसाद तो वहीं बस गये थे। पर उनसे मिलना-मिलाना कम ही होता था। राजनीति में वे हिस्सा ले रहे थे। और एक ऐसी पार्टी में भी वे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित थे, जिसकी विचारधारा को पहले वे अत्यन्त प्रति-क्रियावादी और अनुचित समझते आये थे। वे उनको धन की सहायता भी दे ही रहे थे, सभाओं आदि का भी प्रबन्ध कर रहे थे। भारत में इस [illegible]-

नीतिक पार्टी का एक गुट विश्वविद्यालयों में भी होता है। उनके हर कार्य-क्रम में प्राय: विद्यार्थी ही पहले सोत्साह सक्रिय होते हैं।

निरंजन जानते थे कि प्रसाद उस गुट को उभार रहे थे, उकसा रहे थे, जो अंग्रेजी के पक्ष में था। वे न जान पाते थे, कि इतनी जल्दी इतना व्यापक परिवर्तन प्रसाद में कैसे आ गया था। उनको अफसोस हो रहा था कि उन दोनों के मार्ग इस तरह अलग-अलग हो रहे थे, कि शायद वे कभी मिलें ही न। मगर पार्वती? उसका क्या रुख होगा? क्या प्रसाद के विरोध पर भी वह अपना स्नेहपूर्ण सम्बन्ध उनके साथ बनाये रखेगी?

यही एक कारण था, जो उनको बहुत देर तक हड़ताल में कूदने से रोकता रहा, फिर वे अपने को काबू में न रख सके। वे उन लोगों के साथ खुल्लमखुल्ला हो गये, जो अंग्रेजी के विपक्ष में थे। वे स्वयं चूंकि आन्ध्र के तटवर्ती इलाके के थे और उग्र विचारों के माने जाते थे, इसलिए उनका हड़तालियों का सहयोग करना सहसा विशेष महत्त्व का हो गया।

कई का कहना था कि वे उसी टहनी पर कुल्हाड़ी मार रहे थे, जिस पर वे स्वयं बैठे थे। एक इंग्लैंड रिटर्न्ड अंग्रेजी का प्राध्यापक और अंग्रेजी के विपक्ष में…? यह देख कर भी कई को अचम्भा हो रहा था। उनको उनके सहयोगी वर्ग ने तो 'मूर्ख' की उपाधि भी दे दी थी।

विद्यार्थियों को समझाया गया कि शिक्षा के माध्यम में वे स्वयं कोई कदम नहीं उठा सकते थे, शिक्षा मन्त्रालय को ही कुछ करना होगा। किन्तु विद्यार्थी इतने भड़का दिये गये थे कि उन्होंने अधिकारियों की न सुनी, यह भी कहते सुना गया कि हड़ताल करके उन्हीं लोगों को जगाना चाहते हैं जो आजाद भारत में भी एक विदेशी भाषा को इतनी प्रमुखता दे रहे हैं। बिना हड़ताल के आजकल कुछ नहीं होता। न कोई सुनता है, न देखता है। अधिकारी एक तरफ, हड़तालियों के दो पक्ष, और इस तनातनी को लेकर, बाहर राजनीतिक पार्टियों की खींचातानी—इन सब के कारण तहलका मचा हुआ था। कहीं बात-बात में मुक्का-मुक्की भी हो रही थी। तू-तू, मैं-मैं तो आम बात थी।

यह सही था कि अंग्रेजी विरोधी गुट अक्सर, निरंजन के घर मिला

करता, वही सलाह-मशविरा होता, और उनके मित्र इस ख्याल में थे कि यह सब छुपे-छुपे हो रहा था। बात आदर्श की थी और आदर्श के लिए संघर्ष खुल्लमखुल्ला होता है, तो निरंजन को कोई आपत्ति न थी। हमारा देश है, हमारे देश की भाषा है, भाषायें है, क्यों ऐसे देश की भाषा के माध्यम में शिक्षा दी जाये, जिससे न शिक्षा ही ठीक दी जाती है, जिसके कारण भारतीय भाषायें ग्रस्त-सी हैं, जिसके कारण समाजवाद की स्थापना भी नही की जा सकती, क्यो उस भाषा को प्रोत्साहन दिया जाय ? नौकरी जाती है तो जाये···निरंजन अपने नव प्राप्त उत्साह में यह सोच रहे थे।

विश्वविद्यालय में मिलना-मिलाना मुश्किल हो रहा था। एक तो वायु-मण्डल में तनातनी, सरगर्मी फिर पुलिस सब जगह तैनात, दिन-रात प्रागण में गश्ती। विद्यार्थी वहा मिल न सकते थे। कोई प्रोफेसर सिवाय निरंजन के ऐसा था नही, जो विद्यार्थियों का साथ दे। वे तो उनके साथ देखे भी न जाना चाहते थे। उनमें से अधिकाश घर चले गये थे।

निरंजन का घर विश्वविद्यालय के प्रांगण में तो न था, पर विश्व-विद्यालय के पास ही, एक छोटी-सी पहाडी के पीछे था। यहा नये-नये मकान बन रहे थे। नया मोहल्ला धीमे-धीमे बन रहा था। कई प्रोफेसरो ने अपने मकान यहां बना लिये थे। विश्वविद्यालय के और कर्मचारियो के भी थे। कई विद्यार्थी भी यहा किराये के मकानो में रह रहे थे। यह मोहल्ला नया ही नही आधुनिक भी था, सभी सुविधायें थी, और सबमे बडी सुविधा यह थी कि यह विश्वविद्यालय के समीप था। विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार का मकान भी उसी सडक पर था, जिस पर निरंजन ने अपना कमरा एक बगले मे ले रखा था।

शाम का हल्का-हल्का अधेरा, उनके कमरे मे विद्यार्थी बैठे थे। चर्चा चल रही थी। कहा जा रहा था कि जब तक विश्वविद्यालय में पुलिस है, हड़ताल तो चल सकती है, पर उसमे वह तेजी न आ पाएगी, जो सारे देश का ध्यान खींचने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। पुलिस को कैसे हटाया जाय ? क्या किया जाय ?

गरमागरम बहस बहुत देर तक चलती रही, कोई निश्चय न हुआ। कोई विश्वविद्यालय के अधिकारियो को कोस रहा था, कि जब गम्भीर

हिंसा काण्ड न हुआ था तो उन्होंने पुलिस को प्रांगण में बुलवाया ही क्यों? वे चिढ़े हुए थे। वाइस चान्सलर परामर्श के बहाने दिल्ली चले गये थे। हड़ताल का अन्त नजर न आता था।

इत्तफाक की बात थी कि विद्यार्थी उबले-उबले बाहर निकल रहे थे कि विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार उस तरफ से टहलते-टहलते निकले, उनके साथ उनके लड़के थे। लड़कों ने उनको घेर लिया। गाली-गलौज करने लगे। उनकी कमीज फाड़ दी। कुछ देर उनको न आगे जाने दिया, न पीछे ही। वे वृद्ध व्यक्ति पशोपेश में थे। वे कभी इधर देखते तो कभी उधर। पास ही ऊपर की मंजिल पर, निरंजन इस तरह से खड़े थे, जैसे कोई तमाशबीन हो। रजिस्ट्रार उनकी मदद चाहते थे,पर निरंजन गम्भीर मुद्रा में इस तरह देख रहे थे, मानो सब कुछ उनके हुक्म पर ही हो रहा हो। रजिस्ट्रार उनको तरेरने लगे। गनीमत थी कि विद्यार्थियों ने उनको लिहाज से देखा, वरना वे तो ऐसे बिगड़े हुए थे कि उनको मार-पीट भी सकते थे।

आसपास के लोग इकट्ठे न होते और विद्यार्थियों को न समझाते तो सम्भव था कि पुलिस आती और मामला और उलझता। जाते-जाते, रजिस्ट्रार निरंजन के कमरे की ओर देख रहे थे। वे तब अन्दर जा चुके थे।

॥ अठारह ॥

प्रसाद से निरंजन प्रायः मिला नहीं करते थे। कभी-कभी पार्वती से उनके बारे में मालूम जरूर हो जाता था, और जब से वे दोनों खुल्लमखुल्ला विरोधी पक्षों का समर्थन करने लगे थे तब से तो उनका मिलना करीब-करीब बन्द-सा हो गया था। पार्वती जब कभी निरंजन से मिलने आती तो वह हमेशा गांव से ही आती। वह हैदराबाद में अक्सर न रहती। 'वह

अपने स्कूल की स्थापना में लगी हुई होगी'—निरंजन सोचा करते।

कभी घनिष्ठ मैत्री थी, अब भी कोई शत्रुता न थी, यद्यपि उनके विचारों मे एकमत्य न था, तो भी औपचारिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध तो बने ही हुए थे। वे जिस वर्ग के सदस्य थे उसमे आपस मे वे कटारे फेंक रहे हों, अदालतों मे एक दूसरे की जान लेने के लिए कानूनी पैंतरे ले रहे हों, पर जब वे मिलते तो बड़ी शिष्टता से मिलते। उस मिलन मे आत्मीयता कदाचित नहीं होती, आत्मीयता का अभिनय अवश्य होता है, शिष्टता का आवरण हमेशा बना रहता है।

इसलिए जब निरंजन को प्रसाद के विवाह का निमंत्रण मिला, तो निरंजन को आश्चर्य न हुआ, और उन्होने उसमे सम्मिलित होने का निश्चय किया। यद्यपि विश्वविद्यालय मे हड़ताल जारी थी, और वह सरगर्मी भी, जो हड़ताल के कारण पैदा हो गई थी। शादी हैदराबाद मे ही हो रही थी। हालांकि लड़की का घर हैदराबाद मे न था। प्रसाद के गाव मे भी नहीं, जहा उनका खानदानी निवास था, और जहां उनके परिवार के प्रायः सभी सस्कार हुआ करते थे।

सोचा था कि पार्वती विवाह मे पहले मिलने आयेगी, और कुछ बातें मालूम होंगी, पर वह भी न आयी। वह विवाह की तैयारियों मे व्यस्त होगी। शास्त्री अवश्य दो-एक बार आया था और रोया-धोया था कि अगर पिता जी जेल मे न होते, तो उनके हाथ यह विवाह होता। दक्षिण नहीं मिल रही थी, इसलिए शायद वह कड़वा हो गया था, कोई ऐरा-गैरा पौरोहित्य करेगा, और शादी क्या बरबादी की शुरुआत हो जायेगी। यह घुमा-फिरा कर शाप था, और उस आदमी का जिसका खानदान प्रसाद के खानदान का नमक पीढ़ियों से खाता आया था। उसकी मनोवृत्ति देखकर निरंजन को अचरज हुआ।

निरंजन कई क्रांतिकारी लेखकों की चरित्र सम्बन्धी पुस्तकें खरीद लाये, और उनका एक खूबसूरत बण्डल भी बनवा लिया, ताकि प्रसाद को भेंट का कोई भान न हो। और उनके अन्दर लिख दिया था—"सहयोगी प्रसाद को, जो इनको पढ कर, इनका प्रचार करके भी भूल गये।"
—निरंजन।

यह शरारत थी, पर वे इस तरह वता देना चाहते थे कि प्रसाद अपने निर्दिष्ट पथ से कितनी दूर आ गये थे। निरंजन को भेंट देने का उतना सन्तोष न था, जितना कि इस वक्र रूप से अपने असन्तोष की सूचना देने का।

शहर में उनका वड़ा मकान था, एक पहाड़ी की चोटी पर। आहाता और वना-कतरा वगीचा, जो चोटी से तलहटी तक चला गया था। देखते ही वनता था। दुमंजिला भव्य भवन प्रासाद सा लगता था। आधुनिक और आकर्षक। निरंजन वहां पहली वार जा रहे थे। प्रसाद इससे पहले वहां कभी न गये थे।

वहां जाकर ही उनको मालूम हुआ कि क्यों हैदरावाद में विवाह किया जा रहा था। यह उनका 'गृह-प्रवेश' भी था। किफायत के लिए दोनों एक-साथ किये जा रहे थे। इसके अलावा एक वड़े होटल में दर्जनों कमरे लिये गये थे।

विवाह वड़े जोर-शोर से हो रहा था, जमींदारी रद्द कर दी गई थी। जमींदारी भले ही रद्द कर दी गई हो, पर विवाह से ऐसा लगता था जैसे वह अव भी हो। महंगाई थी, चीजों की तंगी थी, फिर भी इतने सारे खर्च। दिखावा। निरंजन को लगा कि टिमटिमाता दीया, शायद वुझने से पहले खूव जलता है। यहां एक दीया जल रहा था और दूसरा सुलग रहा था। प्रसाद की जमींदारी खतम हो गई हो, पर विवाह के द्वारा वे वहुत वड़ी सम्पत्ति के वारिस भी वन रहे थे।

विवाह में उनकी जाति के सभी जाने-माने लोग उपस्थित थे। उस स्तर पर, प्रायः सभी एक दूसरे से सम्वन्धित भी होते हैं, सामन्ती समाज का ताना-वाना ही कुछ ऐसा है। कोई जमींदार थे, कोई मिल मालिक। कोई साहूकारा करते थे, तो कोई व्यापार—प्रायः सभी सम्पन्न थे। और सम्पन्नता के आधार पर ही उनमें वैवाहिक सम्वन्ध निश्चित किये जाते थे।

उनमें कुटुम्व राव भी थे, जो अपनी लड़की का निरंजन से विवाह करना चाहते थे। जिन्होंने उनको शहर के शानदार होटल में निमन्त्रित किया था। वे इस समाज में वहुत प्रतिष्ठित प्रतीत होते थे। जाना जा

सकता था कि वे बहुत बड़ी सम्पत्ति के मालिक थे। वे बढ़ कर निरंजन से मिले। उनको 'बड़े' लोगों के बीच ले जाकर अपने साथ बिठाया। सबसे उनका परिचय कराया।

मंच पर प्रसाद दूल्हे के वेश में थे। गम्भीर, प्रभावशाली। कभी निरंजन की ओर नजर जाती तो नजर झुका लेते, नहीं तो सहमी-सहमी मुस्कराहट दिखाते। उनके पास ही पार्वती थी। सजी-धजी। कीमती साड़ी पहने। पर गहने कोई नहीं। उसे शायद इस तरह के मौके पर सादगी ही पसन्द थी। वैसे भी उसे दिखावे से चिढ़ थी, बातों के सिलसिले में उसने यह कहा था, "हमें दिखावे ने बरबाद कर दिया।"

पार्वती को वहां खड़ा पा, निरंजन को उस समाज में, जहां वे अन-जाने थे, मात्र एक छोटे सहायक प्रोफेसर थे, एक ऐसा केन्द्रबिन्दु मिल गया था, जिसको देखते-देखते वे अपना समय काट सकते थे। और उन ऊटपटांग रिवाजों से अपना मुंह मोड़ सकते थे, जिनको वह देखना न चाहते थे।

प्रसाद के पिता भी मंच पर थे। बड़ा मंच था, तरह-तरह की चम-चमाती चीजों से अलंकृत। वे गम्भीर स्तम्भ की तरह खड़े थे। वे निरंजन के नमस्कार करने पर इस तरह खड़े थे जैसे वे उनको जानते ही न हों। निरंजन भी मन ही मन मुस्कराये, जैसे उन्होंने उनसे इस तरह के व्यवहार की पहले ही आशंका की हो।

विवाह में प्रायः सभी शहर के प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। कितने ही मन्त्री और उच्च पदाधिकारी। एक बड़े घर का विवाह था, इसलिए सभी के लिए महत्त्वपूर्ण था।

विवाह की रस्म पूरी हुई तो शाम मनोरंजन का कार्यक्रम था। इसमें तो और भी भीड़ थी। वे लोग भी थे, जो प्रसाद को वैयक्तिक रूप से जानते भी न थे। उनकी राजनीतिक पार्टी के लोग। प्रसाद और उनकी पत्नी एक सोफे पर बैठे थे। विवाह के मंच पर तो निरंजन उनकी पत्नी को ठीक तरह से देख न पाये थे, वे साड़ियों की आड़ में ही रही। अब वे देखी जा सकती थी और देखते ही लगता था कि जहां तक सौन्दर्य का सवाल था यह बेमेल विवाह था। प्रसाद हट्टे-कट्टे, गौर वर्ण, सुन्दर, कसरती बदन,

कद्दावर, और उनकी पत्नी काली, चेचक वाली, छड़ी-सी, नाटी-सी। न ढेर से गहने, न कीमती साड़ी ही उनको आकर्षक बना पायी थी। फुस-फुसाने वाले फुसफुसा रहे थे कि प्रसाद सम्पत्ति के लिए बिक गये थे।

कुछ मसखरे यह भी कह रहे थे कि अगर जमींदार प्रायः पर स्त्रीगामी हो जाते हैं, तो क्यों न हों, जब उनको इस तरह की स्त्रियां मिलती हों। वे सोने का ढेर हो सकती हैं, पर सोना अपने आप में न सुन्दर है, न प्रिय ही।

जब निरंजन शामियाने से बाहर गये, और उन लोगों में आये, जो गांव आये थे, तो उनकी बातें सुनकर उनको ताज्जुब हुआ। एक-दूसरे के कान में कह रहा था :

"भाई, मैं दावे से कहता हूं कि कुंवर साहब को मारा नहीं गया था, उन्होंने खुद अपने को गोली मार ली होगी। भला कौन नहीं मरेगा अगर मां-बाप, किसी ऐसी लड़की से शादी तय कर दें..."

निरंजन के लिए यह गोले के विस्फोट की तरह था, उनको अनुमान करते देर न लगी, कि प्रसाद उसी लड़की से विवाह कर रहे थे, जिससे उनके भाई को करना था। इसके साथ एक और बात उभरी कि यहां भी पुजारी वाली बात है, खुद चोरी करो और दूसरों को चोर बताओ। कुंवर ने अपने आपको गोली मार ली, और कुंवर साहब के लोगों ने यह बात फैला दी कि उग्रवादियों ने उनकी हत्या कर दी थी। यदि उग्रवादी उनसे बिगड़े हुए हैं।

निरंजन सोच न पाते थे कि वे इसे प्रसाद का त्याग समझें या स्वार्थ। वे प्रसाद के पास गये और पुस्तकों का बण्डल देकर चले आये। पार्वती को देखना चाहते थे, पर न वह ठीक समय था, न स्थल ही।

जब वे मण्डप से निकले तो उनके साथ कुटुम्ब राव भी आये। उनकी कार बाहर थी।

"आइये, मैं आपको छोड़ दूंगा।" उन्होंने कार की ओर इशारा करते हुए निमन्त्रण दिया।

"मैं घर नहीं जा रहा हूं, धन्यवाद।"

"जहाँ भी जाना चाहें।"

"मेहरबानी, मैं बहुत देर बैठा रहा, अब थोड़ा चलना चाहता हूं, जगह पास है, मैं टहलता-टहलता निकल जाऊंगा, खिली चांदनी है, ताजी हवा है—नमस्कार।"

"आप कहीं शहर से बाहर तो नहीं जायेंगे ?"

"जी नहीं।"

"फिर मिलेंगे···" वे लम्बे-लम्बे डग भरते, मंडप की ओर वापिस चले गये, और निरंजन सिर नीचा किये धीमे-धीमे पग रखते आगे चले जा रहे थे।

॥ उन्नीस ॥

निरंजन बहुत दिन से सोच रहे थे कि क्यों नहीं वाइस चांसलर साहब का बुलावा आया था। इसलिए जब वह आया तो उनको कोई विशेष आश्चर्य न हुआ।

वाइस चांसलर राजनीतिक अखाड़े में काफी दांव-पेंच खेल चुके थे, और दुनियावी बातों का काफी तजरबा रखते थे, कभी वकालत की थी। जब वे एक एम० एल० ए० के चुनाव में पराजित हो गये और उनकी प्रतिष्ठा कुछ-कुछ बेपेंदी होने लगी तो अपने मित्रों की, जो मंत्रिमण्डल में थे, कृपा से वे कुलपति बना दिये गये थे। उम्र में बुजुर्ग थे। पर शिक्षा के क्षेत्र में यद्यपि वे पदेन शिक्षा-शास्त्री समझे जाते थे, उनका अनुभव न के बराबर था। वे विश्वविद्यालय में कम रह पाते थे।

जब विश्वविद्यालय कई दिनों तक खुला नहीं, और सब जगह इसकी चर्चा होने लगी तो वे विश्वविद्यालय में ही रह कर पूर्ण प्रयत्न कर रहे थे कि विश्वविद्यालय जल्द ही खुले। अध्यापक वर्ग तो इसके लिए तैयार था

ही, विद्यार्थी अभी तैयार न थे। जो विद्यार्थियों के आन्दोलन के रूप में प्रारम्भ हुआ था, अब वह एक राजनीतिक आन्दोलन बन गया था।

निरंजन उनके कमरे में मिलने गये। वहां रजिस्ट्रार थे। वे निरंजन को देख मुस्कराये, मुस्कराहट में अपना क्रोध छुपाये हुए थे। पुराने घाघ थे।

उपकुलपति गम्भीर बैठे थे, और इस तरह मेज की दराजें खोल रहे थे जैसे उन्होंने निरंजन को अन्दर आते देखा ही न हो। निरंजन को वे उतना ही जानते थे जितना कि एक उपकुलपति जिसको विश्वविद्यालय के कार्यकलाप में कोई दिलचस्पी न हो, जान सकता है। वही जमींदाराना सलूक।

"आइये प्रोफेसर साहब···" रजिस्ट्रार ने कहा। इससे पहले कि उपकुलपति उनको आसन की ओर इशारा करते, निरंजन स्वयं कुर्सी घसीट कर रजिस्ट्रार के बगल में बैठ गये। वे भी बड़े गम्भीर थे। मुंह सूजा हुआ सा था। प्रायः बड़े-बड़े प्रोफेसर भी उपकुलपति के सामने बैठते न थे।

"तो मैं आपसे फिर मिलूंगा···" रजिस्ट्रार यह कहकर उठकर कमरे से चले गये। निरंजन और उपकुलपति दोनों ही यही चाहते थे।

"आपके बारे में बहुत शिकायतें आ रही हैं।···" उपकुलपति ने रोब से कहना आरम्भ किया। वे सीधे निरंजन की ओर नहीं देख रहे थे।

"शिकायतें? विश्वविद्यालय जब बन्द है, और अध्यापन हो ही नहीं रहा है, तो शिकायतें कैसे आ सकती हैं?" निरंजन ने कहा। जैसे उपकुलपति का सम्बन्ध और अधिकार, परिधि शिक्षण और प्रशिक्षण तक ही सीमित हो।

"हां, अध्यापक और विद्यार्थी तब भी कायम रहते हैं, जब कि वर्ग नहीं चल रहे होते हैं।" उपकुलपति ने उनकी बातें काटीं।

निरंजन कुछ नहीं बोले।

"यदि क्लास नहीं चल रहे हैं, तो क्यों नहीं चल रहे हैं, यह देखना भी हमारी जिम्मेवारी है। अध्यापक का काम क्लास रूम में तो नहीं खतम हो जाता? यदि हो जाता हो, तो हमारे लिए अच्छा ही है। और आज मुझे आपको बुलाने की नौबत ही न आती। आप शायद मेरा इशारा समझ गये होंगे।"

निरंजन ने चुपचाप सिर हिलाया।

"शिकायत यह है कि आपने विद्यार्थियों को हड़ताल के लिए उकसाया है।" उपकुलपति ने कहा।

"लेकिन जब हड़ताल शुरू हुई थी तब मैं शहर मे भी न था।"

"हूं, तब क्या आप इस हड़ताल के विरोध मे हैं?"

"यह प्रश्न दूसरा है।"

"यानी आप इस हड़ताल के पक्ष में है, हड़तालियों के साथ हैं?"

निरंजन कुछ न बोले।

"और भी कई बातें हैं, जिनके बारे में मैंने अभी गौर नही किया है। आपको शायद नही मालूम, जब आपकी नियुक्ति के बारे मे चर्चा हो रही थी, तब पुलिस की रिपोर्ट आपके खिलाफ थी, मैंने ही लिहाज दिखाया था।"

"जी।" निरंजन एक ऐसे व्यक्ति के साथ लड़ सकते थे, जो किसी सिद्धान्त या आदर्श पर लड रहा हो। पर जब बात व्यक्तिगत हो जाती थी, और दूसरा व्यक्ति हितैषी भी हो, तो सहसा वे अभिभूत हो उठते थे और मूक हो जाते थे।

निरंजन हड़तालियो का साथ दे रहे थे, इस कारण वे विश्वविद्यालय के अधिकारियों की नजर में 'विरोधी' थे। नौकरी छोड़ने के लिए अभी वे तैयार न थे। पार्वती जम जाय तो कुछ देखा जाय। जल्दबाजी न दिखाना ही उनको अक्लमंदी लगी।

"हम लोग राजनीति मे रह चुके है, मैं भी जानता हूं कि बिना विद्यार्थियों के कोई जन आन्दोलन नही चल सकता। आन्दोलन तो आपके बगैर भी चलेगा, आप क्यों फिजूल इसमे फंसते हैं। मैं आपके हित की बात कर रहा हूं।" निरंजन जान सकते थे कि अगर वे उनकी बिरादरी के न होते तो इस तरह न बात करते।

"आप संभल कर रहिए। नौजवान है। जवानी मे हर छोटी बात पर खून उबलता है, अपने पैर कुल्हाडी मारना अच्छा नही है। कुटुम्ब राव भी आपके बारे मे कह रहे थे। वे मेरे अच्छे मित्र है। आप कोई ऐसा काम न

कीजिये, जिससे मैं पक्षपात का दोषी ठहराया जाऊं। इस सिलसिले में आपके कारण मुझ पर कोई धब्बा नहीं आना चाहिये। कभी-कभी रजिस्ट्रार से मिलते रहिए, सावधान रहिए। अच्छा।···" उपकुलपति ने अपनी कुर्सी मोड़ी और एक मोटी पुस्तक के पन्ने उलटने लगे।

निरंजन नमस्कार करके चले आये। वात कुछ इस तरह ही चलेगी, इसका एहसास थोड़ा-थोड़ा तो उनको था, पर श्री कुटुम्वराव का नाम लिया जायेगा, और विरादरी के नाम पर उनके साथ लिहाज किया जायेगा, यह वे अनुमान न कर पाये थे। वे जाति-पांति के विरुद्ध थे। पर जिस वातावरण में सिवाय जाति के और किसी वात पर जोर न दिया जाता हो, वे क्या करें। वे अपने सारे आदर्शों के वावजूद कुछ-कुछ विवश अनुभव कर रहे थे। वे सोच न पा रहे थे कि क्या किया जाये ? भारतीय समाज की ये आन्तरिक कमजोरियां उनको स्पष्ट हो रही थीं। अपनी कमजोरी पर भी वे लाचार से थे। परिस्थितियों से समझौता न करना ही शायद अनुभव कहलाता है।

वे वड़े चिन्तित थे। अपनी दुर्वलता पर, अपनी विवशता पर, अपने भविष्य पर···वह स्वार्थ, जो इंग्लैंड में विल्कुल न उभरा था, और देश के लिए वलि होने के लिए उतावला हो रहा था, अव उनको छोड़ता सा लगता था। मूर्ख के लिए कुर्वान हो जाना आसान है, पर जानवूझ कर, तभी कोई कुर्वान हो सकता है, जव कि उसको अपने आदर्शों में आस्था हो, और हर परिस्थिति को झेलने का साहस और वौद्धिक विश्वास हो। निरंजन उपकुलपति के समक्ष इन दोनों वातों में अपने को अपर्याप्त मान रहे थे। उपकुलपति का व्यक्तित्व भी चुम्वकीय था। उनकार किया था, वे कृतज्ञतावश भी कुछ न वोल पाये।

वे अपने कमरे में गये तो दो-चार विद्यार्थी उन्हीं की प्रतीक्षा में थे। वे शायद उनके इशारे पर, विश्वविद्यालय में दंगा-फसाद भी करते, क्योंकि वे जानते थे कि निरंजन उपकुलपति से मिलने गये थे।

"क्या हुआ प्रोफेसर साहव ?" उन्होंने पूछा।

"कुछ नहीं, मुझे जरा सिरदर्द हो रहा है। मैं आराम करना चाहता हूं।"

"दवा वगैरह है ?"

"कोई जरूरत नहीं, साफ हवा हो तो ठीक हो जायेगा। आप बाद में मिल सकते है।" निरजन ने विद्यार्थियों से कहा।

विद्यार्थियों के चले जाने के बाद, वे अपने वराण्डे मे टहलने लगे। थोड़ी देर बाद देखते हैं कि पार्वती एक साइकिल रिक्शा से उतर रही है। वह सीधे उनके कमरे मे चली आयी।

"आपकी कार क्या हुई ?" निरंजन ने पूछा।

"मैंने घरवालो को लिखा ही न था इसलिए कार नही आयी। मैं सीधे स्टेशन से चली आ रही हू।"

"टैक्सी जो ले लेती ?"

"साइकिल रिक्शा ज्यादा सेफ है।"

"हूं।"

"आपने यह मुहर्रमी चेहरा क्यों बना रखा है ?"

"कुछ नही, तुम ठीक हो न ?"

"हा, हां।"

"मुझे जरा सिरदर्द हो रहा था।"

"तो दवा दू ? आराम कीजिए।"

"मेरा सिरदर्द टहलने से ठीक हो जाता है।"

"आपके यहा गुसलखाना वगैरह है न ? नहा-धो सकती हूं ?"

"यहां ? घर क्यों नही जाती ?"

"आप भी···"

"तुम्हारे लोगों को मालूम हो गया तो !"

"तो क्या ?"

निरंजन जान सकते थे कि पार्वती ने इस तरह उनके साथ अपनी जिन्दगी बिताने का निश्चय कर लिया था।

"अभी नहीं, थोड़ा सब्र करो जिस लडकी के लिए टैक्सी मे आना सेफ नही है, एक ब्रह्मचारी के यहां रहना भी शायद ठीक नही है।"

पार्वती मुस्करायी। "भाई की शादी के बाद मन नही लगता। उस घर में जाने की इच्छा भी नहीं होती।"

"क्यों, तुम्हारी भाभी तुनुक मिजाज है ?"

"जैसी शक्ल वैसी ही अक्ल, विल्कुल मिर्च···काली मिर्च," पार्वती कहती- कहती खिसियायी।

"लेकिन लोक-लज्जा की भी तो वात है। तुम्हारे वावू जी भी तो हैं, उस बड़े मकान में तुम्हारे लिए भी तो कोई अलग कमरा होगा फिर··· मां···"

"इन वातों में मर्दों की अक्ल शायद धीमे-धीमे काम करती है। हर वात साफ-साफ नहीं कही जा सकती।"

"मैं सव जानता हूं, तुम थोड़ा सब्र करो, समाज के सुधार का अर्थ समाज का पूर्ण धिक्करण नहीं है। और यहां, जव चाहे तव विद्यार्थी आते रहते हैं। वक्त आने दो, और वह वक्त जल्द ही आयेगा।"

"अच्छा।"

वह अभी इधर-उधर देख रहा था कि दरवाजे पर, शास्त्री प्रत्यक्ष हुए। पार्वती उसको जानती थी, और उसको उस समय वहां देखना न चाहती थी। लेकिन वह उसको देखकर एक तरफ हट कर, गम्भीर वैठ गई।

"प्रोफेसर साहव, आपको सिरदर्द है ?" शास्त्री ने पूछा।

"हां, हां।"

"विद्यार्थियों ने वताया था कि आपकी तवीयत नासाज है। मैंने सोचा कि देखता ही जाऊं।"

"वड़ी मेहरवानी।"

"आप वी० सी० साहव से भी मिले थे क्या ?"

"हां, हां, जरा हमें सिरदर्द है।" निरंजन ने उसको रोका, न मालूम वह उनसे क्या-क्या पूछता। न समय का ख्याल, न स्थल का ही विचार। शास्त्री अपना-सा मुंह लेकर चला गया।

"ये लोग जो किसी के मरने पर भी तभी आते हैं जव कि दक्षिणा दी जाती है और आपके सिरदर्द के वारे में जानते ही चले आये, वहुत वदल गये हैं।"

"हूं, पार्वती, इससे पहले कि यह तुम्हारे घर जाकर तुम्हारी चुगली

करें, तुम ही जो घर चली जाओ। तुम अभी शहर में रहोगी न? मैं ही मिलने चला आऊंगा।"

"नहीं, मैं ही शाम आ जाऊंगी।" पार्वती ने कहा। और अपना बैग लेकर, नीचे चली गई। वहां साईकिल रिक्शा थी। उसी पर सवार होकर चली गई।

निरंजन को लग रहा था कि एकसाथ उनके सिर पर मूसल गिर रहे हों और साथ-साथ कोई चंवर भी कर रहा हो। ऊष्णता में चन्दन का लेपन कर रहा हो।

॥ बीस ॥

निरंजन में बड़ी जबर्दस्त उदासी आ गयी थी। कई तरह का फिक्र एक-साथ आ पड़ी थी। कभी ऐसा महसूस होता, जैसे आत्मवचना कर रहे हों। फिर सोचते कि इस दुनिया में इतना ईमानदार होना भी अच्छा नहीं है। उनके सामने कई विकल्प थे, और मन की हालत यह थी कि कुछ निर्णय न कर पाते थे।

वे इस उदासी में प्रसाद के घर गये। वह बड़ा घर भी सुनसान था, सम्पन्नता का दंड, शायद एकाकीपन है। आत्मकेन्द्रित व्यक्ति समाज में रह कर भी समाज का नहीं हो पाता। प्रसाद कुछ ऐसे ही थे।

निरंजन उनकी बैठक में काफी देर बैठे रहे। खबर भिजवाई। तुरंत न पार्वती आयी, न प्रसाद ही। पांच-दस मिनट बाद एक बड़ा चोगा पहने कमरबंद बांधे, आंखें मलते-मलते प्रसाद कमरे में आये।

"आप सो तो नहीं रहे थे, मैंने आपको कहीं उठा तो नहीं दिया है?"

"नहीं, भाई, रात जरा देरी से सोया था, यह शहर भी खूब है, रात भर कुछ न कुछ होता ही रहता है, और न जाओ, तो लोग बुरा मान

जाते हैं। रोम में रोमन की तरह रहना सीखो।…"

"कहना आसान है, करना उतना आसान नहीं।"

"कितने बजे हैं ?"

"ग्यारह।"

"हूं," प्रसाद ने इस तरह इधर-उधर देखा, जैसे ग्यारह बजे उठना ही दिनचर्या हो।

"काफी हुई कि नहीं…" प्रसाद ने पूछा। ऐसा लगता था कि उनको कोई फिक्र न थी, यदि उनकी खातिरदारी भी की गई। उसमें औपचारिकता थी। कोई आत्मीयता नहीं।

"हो गई।"

"क्या खबर है ?"

"कुछ नहीं।" बातें हो रही थीं, पर बात कुछ बन नहीं रही थी। यह दोनों ही जानते थे।

"सुनता हूं, तुम इन क्रान्तिकारी लेखकों में दिलचस्पी ले रहे हो।"

"मैं लिखता हूं, इसलिए लिखने वालों में दिलचस्पी लेता हूं।"

"मैं तजर्बे से जानता हूं कि ये सब मौसमी मेंढक हैं, और तुम इनके चक्कर में पड़ कर बरबाद हो जाओगे। कभी मेरा साथ दिया था इसलिए आगाह किये देता हूं।"

"हूं।"

"लिखते ही हो, और जब लिखने और तकरीर झाड़ने के अलावा कुछ और काम करना पड़ जायेगा तो इस तरह हाथ झाड़ कर खड़े हो जायेंगे जैसे उनका किसी से कोई वास्ता ही न हो।"

"हूं।"

"हिन्दुस्तान में सबसे बड़ी बात यह है कि तुम किस जाति में और किस तरह के वर्ग के परिवार में पैदा हुए हो, अगर तुम मध्य वर्ग के आदमी हो, तो वे तुम्हारा विश्वास भी न करेंगे, अगर वे खुद मध्य वर्ग के न हों। तुम ऊपर से उनमें जाओ, तो तुम सस्पेक्ट हो, और नीचे से जो जाओ तो तब भी सस्पेक्ट। क्या कोई कर सकता है इस देश में ? क्रान्ति हो तो कैसे हो ?"

"हूं।"

"आजकल लगता है क्रान्तियां भी ओबसिलीट हो गई हैं। डेमोक्रेसी कुछ इस तरह हो गई है कि जहां विस्फोटक क्रान्ति की आशंका होती है, तो खुद ऐसे परिवर्तन कर दिये जाते हैं कि क्रान्ति की आवश्यकता ही नही रहती।

"हूं।"

"रूस मे कभी क्रान्ति हुई थी। पर वह क्रान्ति अब जम गई है। और क्रान्ति भी जमकर प्रतिक्रियावादी हो जाती है।

"लेकिन डेमोक्रेसी मे परिवर्तन तो तभी होते हैं, जब परिवर्तनों के लिए आन्दोलन किये जाते हैं, और आन्दोलन तभी चलते हैं, जब उनकी आवश्यकता होती है, और वे कहो और किसी देश मे सफल हो चुके होते हैं, कम से कम इस सिलसिले मे तो साम्यवादी देशों की जरूरत है।"

"हूं, इसलिए ही तुम आन्दोलन चला रहे हो ?"

"मैं ? मैं तो अभी तक कुछ भी न कर सका। एक तरह के कोहरे मे हूं।"

"मानव समाज, कम से कम भारतीय समाज ऐसा नहीं है कि तुमने तालाब मे एक हाथ मारा और उसकी लहर दूसरे किनारे पर जा लगेगी, यह तो जमा हुआ समाज है, और इस पर धर्म की मोटी काई है।"

"यही तो मैं कह रहा हूं। इसलिए ही हमें चेतना पैदा करनी होगी।"

"करो, पर इसके लिए कुर्बान होने की क्या जरूरत है ? मगर कहे देता हूं, इसमे कामयाब नही होंगे। बड़ा विकट काम है। बडा उलझा हुआ झमेला है।

'क्रान्ति तो कामयाब कभी भी नही होती···यह एक निरन्तर प्रक्रिया-सी है। अगर क्रान्ति का हौआ और असलियत सामने न हो, तो कुछ भी न हो।"

"यानी तुम उस हौए को पैदा कर रहे हो···" प्रमाद ने सिगरेट सुलगा ली।

"एक आदर्श होना चाहिये, आदर्श प्रायः इतने ऊंचे होते हैं कि उनको कभी कोई पूरी तरह प्राप्त नही कर सकता। यह सम्भव नहीं है। वे जान-

बूझ कर ऊंचे रखे जाते हैं। अगर कोई इस वजह से काम ही न करे, तो वह बुड़बुक है। आदर्श इसलिए होते हैं कि मनुष्य के काम एक निर्णीत, अभीष्ट दिशा में अनुशासित रूप में चलें। आदर्शों की कार्यान्विति से सफलता आंकी नहीं जाती, वाकई सफलता और असफलता की बात ही नहीं उठती। क्योंकि नित नई-नई सामाजिक आवश्यकताएं, बढ़ती जाती हैं, बदलती जाती हैं।

"हां, अभी जोश में हो। मगर एक बात है, आदर्शों का रास्ता बड़ा संकरा है, खड़ी पहाड़ी पर पगडंडी-सा है, बहुत टेढ़ा-मेढ़ा। यथार्थ भी बदलता है, और कभी-कभी मुंह की भी खानी पड़ती है। तुम्हें भी जल्द ही आटे-दाल का भाव मालूम हो जायेगा।"

"यथार्थ आदर्शों की आंशिक उपलब्धि होती है।"

"हां, वैचारिक स्तर पर, व्यावहारिक स्तर पर नहीं। खैर, छोड़ो, आये और आते ही बहस में लग गये। क्रान्तिकारियों को बुरी लत होती है, मैं तो वह क्रान्तिकारी हूं, जो क्रान्तिकारियों की टोली में प्रविष्ट होने से पहले ही बहिष्कृत हो गया।"

"यह सब तुम्हारा खयाल है।"

"हां, हां, बताओ, क्या खाओगे। कुछ तो खाओ।"

"तुमने न खाया हो, तो खा आओ, मैंने खा लिया है।"

"अच्छा," प्रसाद ने कुर्सी के पास रखे हुए एक स्विच को दबाया और एक सिगरेट सुलगा ली।

"दिन-रात यही चख-चख है, या कुछ और भी करते हो?"

"और कुछ करने को जी नहीं चाहता, घुटा-घुटा-सा रहता हूं, इतनी बड़ी दुनिया है, पर इसमें मेरा इतना छोटा-सा दायरा है कि मुझे ही सोच कर अचरज होता है, अफसोस होता है।"

"दायरा बड़ा बनाओ। क्रान्तिकारी होना ही, अपने को एक ढांचे में बांध लेना है। यह तुम जैसे बुद्धिजीवी के लिए अच्छा नहीं है।"

"हूं।"

एक लड़की बड़ी ट्रे में काफी वगैरह ले आयी। प्रसाद ने सिगरेट ऐश-ट्रे में डाल दी और काफी की चुसकी लेने लगे।

निरंजन ने उस लड़की को एक नजर से देखा, फिर नजर फेर ली। जैसे उन्होंने पार्वती की आशा की हो और आ कोई और गयी हो।" "पार्वती नही है क्या ?"

"क्यों कुछ डिक्टेट करवाना है क्या ?" वे हँसे, "वह दो-तीन दिन पहले तो आयी थी, कहीं होगी।" प्रसाद ने कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी, जैसे पार्वती का घर में होना और न होना बराबर हो।

निरंजन ने सोचा, 'क्या शादी के बाद लोग इतने बदल जाते हैं कि बहिनों की भी परवाह नहीं करते ? तो वह ठीक ही कह रही थी। ताज्जुब ही क्या है अगर जल्द वह भी अपना घर बसा लेना चाहती है।

निरंजन कहना भी न चाहते थे कि पार्वती को बुलाया जाय। वे जान सकते थे कि पार्वती ने प्रसाद से, उनके बारे में कोई बात न की थी। क्यों नहीं की थी ? यह भी सोच न पाते थे। सम्भव है कि वह मेरी अन्तिम राय जानकर ही उनसे कुछ कहे। अच्छे बड़े घर की लड़की है, और मैं एक अदना-सा असिस्टेन्ट प्रोफेसर। उसके लिए बलिदान ही तो है। जल्दबाजी दिखाना अच्छा नहीं है। तभी कोई नदी में कूदता है जब कि दूसरा किनारा दीखता हो।

वह मिलेगी ही। मुझे भी इस सम्बन्ध में बात नहीं करनी चाहिये थी। वह यह आशा तो नहीं करती कि मैं ही उसके घरवालों से बातचीत शुरू करूंगा। अगर यह सब उनकी मर्जी के खिलाफ हो रहा है, तो क्या होगा ? कुछ भी हो, देखा जायेगा।

प्रसाद खा-पीकर आराम से, सोफे पर, पैर उठाकर बैठ गये। सिगरेट सुलगा ली और छत की ओर देखने लगे। धुआं उड़ाते हुए वे कहने लगे, जैसे कोई बात अधूरी छोड़ दी हो, और उसको पूरा करना चाहते हों, "क्रांति की बात कर रहे थे। क्रान्ति होती है, जब वार्गिक विषमताएं होती हैं, और एक वर्ग दूसरे वर्ग पर अत्याचार करता है। अब भारतीय समाज में वार्गिक विषमताएं रह ही कहां गई हैं ? और जो थोड़ी बहुत हैं, वे भी कानूनन खतम की जा रही हैं। धनी और गरीब की विषमताएं खतम की जा रही हैं, धनी और गरीब की विषमताएं स्थिर विषमताएं नहीं हैं। गरीब धनी हो सकता है, यानी जमी-जमाई विषमताएं नहीं हैं—ऐसी हरगिज

नहीं, जो क्रान्ति का कारण बनती हैं।

"औद्योगिक प्रगति के कारण, मनुष्य की प्रगति के अवसर बढ़ रहे हैं, व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्य बदल गये हैं, बदल रहे हैं, अब कोई देश टापू नहीं रह गया है, इसलिए वे प्रतिबन्ध और निर्बन्ध भी नहीं हैं, जो विप्लव के कारण बन सकते हैं। समाज इस तरह औद्योगिक और यान्त्रिक होता जा रहा है कि पुराने मूल्य बदल रहे हैं। और इन मूल्यों के अनुसार क्रान्ति किसी भी समस्या का रामबाण परिष्कार नहीं है।"

निरंजन कुछ झुंझला रहे थे—पर प्रसाद को ध्यान से सुनते जा रहे थे, और वे सिगरेट के धुएं के साथ बातें भी लगातार उगलते जाते थे।

एक समय था जब समाज में, या समष्टि में व्यक्ति अपनी सुरक्षा देखता था, पर आजकल संवैधानिक गारंटीज, और औद्योगिक सुविधाएं, इतनी और इस तरह की हैं कि व्यक्ति अपने निजी जीवन यापन के लिए पहले से कहीं अधिक आत्मनिर्भर हो गया है। क्रान्ति एक सामाजिक विस्फोट है। वैयक्तिक विस्फोट नहीं है।

एक जमाना था कि व्यक्ति अपने देश के लिए, अपने समाज के लिए अपने को अर्पित कर देना गौरव समझता था। आज यह मूर्खता है। देश-भक्ति भी क्रान्ति की तरह ओबसिलीट हो गई है। सारा मानव समाज एक है, सारा संसार एक देश है, अगर नहीं भी हुआ है, तो ऐतिहासिक प्रवाह इस प्रकार का है, कि शीघ्र बन जायेगा। इस सन्दर्भ में हमारा क्रान्ति के लिए काम करना, कुर्बानियां करना कोई अर्थ नहीं रखता।

क्रान्तियां होती हैं, जब युद्ध होते हैं और युद्ध खिचते जाते हैं, जैसे रूस में हुआ, चीन में हुआ, या वीयेटनाम में हुआ, चूंकि सारा संसार एक हो रहा है, इसलिए जब एक देश में क्रान्ति से कुछ सम्पन्न होता है, तो समीपस्थ देशों में, दूसरे देशों में, क्रान्ति के बिना ही वह सब होने लगता है जो ऐतिहासिक कारणों से वहां सम्भव हुआ है। अनेक देशों में बिना क्रान्ति के ही बहुत कुछ हुआ है, जो रूस में कभी क्रान्ति के कारण हुआ था।

क्रान्ति होती है, की नहीं जाती। होती है परिस्थितियों के कारण, क्या ऐसी परिस्थितियां हमारे देश में हैं? अगर हैं भी तो क्या वे वैधानिक तरीकों से सुधारी नहीं जा सकतीं?

निरंजन ने कहा, "संविधान तो ठीक है, पर तथ्य यह है कि संविधान के होते हुए भी शोषण होता है।"

"पर क्या उसका इलाज हिंसा है? शोषण नही होना चाहिये, होगा भी नहीं, सच यह है कि आजकल हिंसा केवल वैयक्तिक प्रतीकार का आवेशात्मक साधन रह गया है। इस तरह प्रतीकार लेना, सभ्यता और साम्यवाद, और संविधान की दुहाई देने वालों को नही सोहता है।"

"हू, लगता है, तुम्हारी आंखें जो इंग्लैंड में बन्द हो गई थी, हिन्दुस्तान मे आकर खुली हैं।" निरजन ने ताना कसा।

"खुली हैं, इसलिए तो कह रहा हू कि तुम भी खोलो।"

"आखें बन्द करना, या उनका खुलना किसी के कहने पर नही होना।"

"घटनाए करा देती हैं—यही न! घटनाओं को समझो।"

दोनों कुछ देर चुप रहे। प्रसाद ने फिर सिगरेट सुलगाई। वे एक प्रकार के नशे में थे। फिर मुट्ठी बन्द करते, खोलते इस तरह कहने लगे, जैसे कोई बात कहना भूल गये हो।

कभी तुमने सोचा कि हिंसा के मार्ग मे हिंसा को ही बल मिलता है? उसी पूजीवाद को जिसको तुम निर्मूल करना चाहते हो? हिंसा होगी, तो प्रतिहिंसा भी होगी, यानी अस्त्रों का बड़े पैमाने पर उपयोग। भला उन पूजीपतियो का होगा जो शस्त्र बनाते हैं, अस्त्रों का व्यापार करते है। वे ही लाभ उठाएंगे, क्योंकि असंगठित, सीमित हिंसा कभी भी शासकीय, संगठित, प्रतिहिंसा का सामना नही कर सकती।

हमारे यहा कोई डिक्टेटरशिप तो है नही, कि लुके-छुपे, गोरिल्ला युद्ध किये जायें। हा, पददलित लोग है, शोषित लोग हैं, किन्तु क्या उनकी परिस्थिति बिना हिंसा, बिना क्रान्ति के सुधारी नही जा सकती, क्या पिछले दिनों सुधारी नही गई? जब शोषक का स्वार्थ ही इस में हो, कि तथा-कथित शोषित सन्तुष्ट रहे, तो वह भला क्यों अन्धाधुन्ध शोषण करेगा। वर्तमान श्रमिक सम्बन्धी कानून इस तरह के हैं कि कोई भी पूजीपति बिना वैयक्तिक जोखिम मोल लिये, किसी का कोई शोषण नही कर सकता। एक समय मे हिंसा के लिए व्यापक संगठन सम्भव नही है, और बिना

संगठन के हिंसा सफल न होगी। अगर ट्रेड यूनियन जैसे संगठन हर क्षेत्र में बन जाएं, तो उस व्यापक संगठन की आवश्यकता भी नहीं है।

क्रान्ति का ख्याल उसी तरह का पुराना और अव्यावहारिक है, जिस तरह मार्क्सिज्म का।"

निरंजन ने उनकी बात काटते हुए कहा, "उस हालत में राजनीतिक हत्याएं होंगी।"

"हां, पर वह क्रान्ति नहीं होगी। क्रिमिनल केस होगा, तुम रिवोल्यूशनरी न होकर क्रिमिनल होना चाहते हो?" प्रसाद हंसे।

थोड़ी देर चुप रहे। निरंजन को दिग्भ्रम-सा हो रहा था। उनको समझ नहीं आ रहा था, कि कैसे उनके मित्र का इतना कायापलट हो गया था। बातें वैसे ही कर रहे थे, जैसे इंग्लैंड में किया करते थे—पर सब उल्टा। प्रसाद इस तरह हाथ मल रहे थे, जैसे इतना कहकर भी बहुत कुछ कहने को बाकी रह गया हो।

"एक समय था जब धर्मगुरु, धर्माचारी और शासक सामन्त सब मिल-जुल कर शासन करते थे। आज कोई ऐसी सांठ-गांठ नहीं है, शासन सबका है, और अपना-अपना। इसलिए व्यक्ति स्वतन्त्र है।"

"यही तो तुम कह रहे हो कि हर कोई धनी हो सकता है, लेकिन बात धनी होने की नहीं है। उस जमाने में भी लोग धनी हो जाते थे, बात है वंचित रहने की, शोषित रहने की।"

"अब कौन वंचित है, सबको समान अधिकार प्राप्त हैं, शोषित हैं भी तो वे अधिक शोषित नहीं रहेंगे। आंखें खोलो।"

"सारे समाज को सुधारना तो स्वप्न-सा है, असम्भव। अगर हम अपने परिवार को ही सुधार लें तो काफी है, विवाह करो और परिवार बसाओ। यह क्रान्ति का बुखार जाता रहेगा। विवाह से पहले हर कोई हिन्दुस्तान में या तो कवि है, नहीं तो क्रान्तिकारी। अधेड़ होते-होते, न कोई क्रान्तिकारी रह पाता है, न कवि ही। देख लो, कहीं पछताना न पड़ जाये।" प्रसाद कहते-कहते हाथ ऊपर कर, जैसे अंगड़ाई ले रहे हों, खड़े हो गये।

निरंजन भी खड़े हो गये, वे अपनी उदासी हटाने आये थे, और यहां

आकर उनको लग रहा था जैसे ढेर-सी नई चिन्ताएं मोल ले ली हों। वे सोच नहीं पा रहे थे कि क्या कहा जाय, क्या किया जाय। प्रसाद के पास युक्तियां थी, और उनके पास, उनको लग रहा था कि प्रत्युक्तियां नहीं थी।

कुछ देर वहां रहे और फिर अपनी साइकिल पर, अपने कमरे में चले आये और बीयर की बोतल खाली करने लगे निरंजन।

॥ इक्कीस ॥

निरंजन सुबह-सुबह बाहर आये, तो देखा, रजिस्ट्रार साहब शास्त्री के साथ टहल रहे हैं। शास्त्री न मालूम पहले कहां रहते थे, पर पिछले दिनों वे भी इसी मोहल्ले में रहने लगे थे। शास्त्री विद्वान हों या न हों पर अच्छे नौकर थे और अपने से बड़ों को हमेशा खुश रखते थे। लेकिन निरंजन को आश्चर्य हो रहा था कि वे कैसे रजिस्ट्रार के साथ जा रहे थे, जबकि सारा विश्वविद्यालय उन पर नारों की आग उगल रहा था।

नौकरी का और कोई फायदा हो या न हो, समय भारी नहीं लगता। एक निश्चित कार्यक्रम में जीवन चलता जाता है, ऊब होती है पर समय उस तरह समस्या नहीं बनता जिस तरह काम न होने पर बनता है।

निरंजन अजीब मूड में थे, न पढ पाते थे, न लिख पाते थे, उन लेखकों के पास भी न जा पाते थे, जो अपनी कविताओं द्वारा इस जमी हुई झील में—और भारत का समाज जमी हुई झील ही तो है—आग लगाना चाहते थे। जब अपना मन ही एक अनिश्चित रूप से अस्थिर हो रहा हो, तो सारी दुनिया एक गलत धुरी पर चल रही प्रतीत होती है।

कई दिन से घर से चिट्ठी न आयी थी। उन्होंने घर चिट्ठी लिखी। उनके पिता जी का वही पुराना रोना था, शादी हो और परिवार का कर्ज

जल्द से जल्द खतम हो। वहिन की शादी की जिम्मेवारी भी उन पर थी। वह जाति क्या निर्वीर्य न होगी जो ससुराल के रुपये पर, हाथ पर हाथ रखे, जिन्दगी आराम से, गुजार देना चाहे। क्या वाहियात बात है, शादी क्या है, आर्थिक लाभ ही सही, व्यक्ति की बरवादी है। सारी जन्मजात प्रतिभा इस उपभोगों के लुभावने जीवन में, बिना विकसित हुए, लुप्त हो जाती है। कितना बड़ा दण्ड है। पिता जी को भी चिट्ठी लिखी।

इतना विशाल संसार है, और वे संसार का उद्धार करने निकले हैं, पर वे इतने एकाकी हैं। इस नगर में इतने हैं, कई हमसफर हैं, कितने ही सहयोगी हैं, बहुत से जान पहचान के। कोई भी तो मित्र नहीं है। ऐसा मित्र जिससे मन की बात कही जा सके। यह वर्तमान सामाजिक जीवन की विडम्बना है।

वे फिर प्रसाद के पास जा सकते थे। पर उन्हीं के कारण तो उनके मन में यह उथल-पुथल मची हुई थी। न मालूम फिर क्या कहें, और उनके मन में और खलवली मचे ?

बड़े शहरों में कुछ न सूझे, तो कम से कम आदमी इधर-उधर देखना, लोगों को निहारता, होटलों और वारों के चक्कर काटता, समय काट सकता है, लेकिन इसमें भी आफत यह है कि इस तरह समय काटने वाला हमेशा जानता है कि वह समय काटने के लिए ही यह सब कर रहा है। तब समय और बोझ हो जाता है। निरंजन को इस तरह घूमना-फिरना भी पसन्द न था।

अच्छी तरह नहा-धोकर, खूब खा-पीकर, जब उनको और कुछ न सूझा तो चादर तानकर आराम से सो गये।

जब आंखें खुलीं तो पार्वती कमरे का दरवाजा खटखटा रही थी, निरंजन को लगा जैसे कोई सपना देख रहे हों।

"अरे आप···?"

"नहीं, तुम···" पार्वती मुस्करायी। "अन्दर आ सकती हूं न ? दिन का समय है, भले घर की भली लड़कियां भी मित्रों को देखने जा सकती हैं।" यह कहकर वह हंस दी।

निरंजन ने दरवाजा खोल दिया, और पार्वती हवा के झोंके की तरह

अन्दर चली आयीं। और उनके पास, उनके पलंग पर ही बैठ गई। वह लाज और संकोच नहीं जो शुरू-शुरू में होती है। जब एक स्त्री किसी के साथ घनिष्ठ हो जाती है, तो वह अपनी घनिष्ठता प्रदर्शित करना चाहती है।

"और तुम कहां चली गई थीं ? मैं तुम्हें देखने प्रसाद के घर भी गया था।"

"आप वहां गये थे ?"

"हां, देखने तो तुम्हें गया था, लेकिन अच्छा खासा लेक्चर सुनना पड़ गया।"

"आजकल वे लेक्चर ही तो देते हैं, करते-कराते कुछ नहीं हैं। शायद करने की कोई जरूरत नहीं है। काम-धन्धे की कोई जरूरत नहीं, फिर लेक्चर देकर क्यों दूसरों को गुमराह करते हैं ? चुप ही जो बैठ जायें, समय जाया करने के और भी तरीके है।"

"आज तुम अपने भाई पर ही चांदमारी कर रही हो।"

"सच कह रही हूं, मैं सब जानती हूं, क्रान्ति और राजनीति भी इन लोगों के लिए एक विलास है। उस समाज में डूबे भी मिनिस्टरिटी न मिलेगी। यहां सब अभिनय है, शिष्टता का अभिनय, आत्मीयता का अभिनय···मैं ऊब चुकी हूं।"

"कल उनका लेक्चर सुनना पड़ा और आज तुम्हारा।" निरंजन हंसे।

"लेक्चरारों को भी, कभी लेक्चर सुनना चाहिये, कम से कम यह जानने के लिए कि और कितने उनकी तरह सोच रहे हैं।"

"मैं नहीं जानता था कि तुम्हारे ख्यालात इस तरह के हैं, मैं यह सोच रहा था कि तुम भी अपने भाई की प्रतिध्वनि-सी हो और अपना कोई व्यक्तित्व नहीं रखती हो।"

"मैं भी प्रतिध्वनि थी, जब तक इंग्लैंड में वे रहे, और कभी-कभी उनकी चिट्ठियां आतीं, वे किताबें भेजते, तो बड़ी खुशी होती। कुंवर साहब क्या गुजरे, और क्या जमीन के बारे में इतने सारे कानून पास हुए कि वे यकायक बिल्कुल बदल गये। मुझे उनका बदलना बिल्कुल पसन्द न आया, मुझे शौकिया क्रांतिकारी नहीं जचते। वे खुद जो हैं सो हैं, वे दूसरों

को भड़का कर भटका देते हैं।"

"हूं, तो तुम भी यह सब देख रही हो, खैर, कहां थीं तुम ?"

"मैं गांव गई हुई थी। मैं यहां रह नहीं पाती हूं। और वहां काम भी है।"

"सीधे यहीं आ रही हो ?"

"हां।"

"कुछ खाया-पीया है कि नहीं ?"

"चलिए, खायेंगे, पीयेंगे, आपके यहां तो ब्रह्मचारी के लायक भी खाना न होगा।"

"चलो, तुम ऐन ठीक वक्त पर आयीं। मैं इतना ऊबा-ऊबा-सा था कि सोच नहीं पा रहा था कि क्या करूं, इसलिए खूब सोया, क्या बज रहा है अब ?"

"चार।"

"तो चार-साढ़े चार घंटे सोया हूं, हैं ?"

"शायद कई दिनों की नींद बाकी होगी।"

"हां, अगर तुम न हो, तो नींद भी क्या आयेगी।" निरंजन ने फब्ती कसी और पार्वती उनका हाथ पकड़कर सहलाने लगी।

वे दोनों बाहर चले आये। निरंजन उस मामूली होटल में गये, जिसमें वे रोज खुद खा आते थे। पार्वती साथ थी। बड़े रईस घर की थी, टैक्सी से एक अच्छे होटल में चले गये। इधर-उधर की बातें करते, खाते-पीते, छः बज गये।

"घर जाकर क्या करेंगे ? दिन में इतना सोया हूं कि रात नींद नहीं आयेगी। चलो कोई पिक्चर ही देख लें।" निरंजन ने प्रस्ताव रखा।

"चलिए।"

"घर में तुम्हारी इन्तजार तो नहीं न होगी ?"

"कोई जानता ही नहीं है कि मैं शहर में हूं। मैं सयानी हूं, मेरी उम्र अट्ठारह से अधिक है।"

"मैं नहीं पूछूंगा कि कितनी है। शर्माओ मत।" वे दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़ कर हंसे।

वे टहलते-टहलते सिनेमा हाउस आये। अंग्रेजी की पिक्चर थी। भीड न थी। पाच-दस सीट परे कुटुम्ब राव बैठे थे, और उनके साथ कोई महिला। निरंजन को देख कर वे मुस्कराये, और उनकी सीट के पास चले आये।

"ये कौन हैं?" उन्होने शिष्टता का भी ख्याल न किया और अपना कुतूहल व्यक्त किया।

"मेरी एक फ्रेंड है।"

"अच्छा, बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर।" उन्होने इस प्रकार पार्वती से कहा, जैसे उनका परिचय कराया गया हो, हालांकि निरंजन ने उनका परिचय नही कराया था। "मैं भी एक फ्रेंड के साथ आया हूं। अच्छा फिर मिलेंगे···"

इस आदमी से कोई कुछ कहे भी तो क्या कहे, शायद इनके समाज मे इस तरह किसी स्त्री के साथ आना बुरा नहीं माना जाता है। बुरा माना भी जाता हो, तो इनको कोई फिक्र नही थी। फिर वे उस जमाने के आदमी हैं, जबकि रईसों का पाच-दस रखैल पालना शान समझा जाता था।

जो भी हो, निरजन और पार्वती का समय चैन से कट रहा था।

पिक्चर खत्म हुई तो निरंजन ने कहा, "मैं तुमको घर छोड आऊं?"

"घर?——मैं आपके साथ आ रही हूं, जब साथ खा सकती हू, सिनेमा देख सकती हू, तो साथ रह भी सकती हू।"

निरंजन कुछ न बोले। आखिर ये भी तो उस समाज की हैं जिसके कि प्रसाद है, कुटुम्ब राव है, जो मन मे आया, करेंगे, कोई बुरा मानता है तो माने——अपनी बला से। एक बार मना कर देख लिया, अगर वह नही मानती है, तो मेरा क्या कसूर है। वे मन मे चाहते भी थे, कि पार्वती उनके साथ आये। समय जो भारी हो रहा था। और वे तब तक एक निश्चय पर भी आ चुके थे। इस परिचय के दौरान पार्वती का प्रभाव कुछ ऐसा हो गया था कि वे उसके साथ बध जाना चाहते थे——विवाह के बंधन मे।

वे टैक्सी मे अपने कमरे के सामने रुके, तो रजिस्ट्रार और शास्त्री उस तरफ से टहलते-टहलते गुजर रहे थे, और दोनो तिरछी नजर से निरंजन और पार्वती को देख रहे थे। निरंजन को उनका उस तरफ से गुजरना

अच्छा न लगा।

वे वापसी में खाने-पीने के लिए कुछ ले आये थे। खाया-पीया। बातों-बातों में आधी रात हो गई। विवाह की रस्म न हुई हो पर उन दोनों में उस रात वही हुआ जो विवाहित पति-पत्नी में होता है।

।। बाईस ।।

अभी सवेरे का झुटपुटा ही था कि कमरे के किवाड़ किसी ने खटखटाया। निरंजन कुछ घबराये। स्थिति ही कुछ ऐसी थी। पार्वती से भी कहते न बनता था कि वह कहीं छुप जायें।

निरंजन ने किवाड़ खोले, तो खाकी वरदी में, पुलिस की टोपी लगाये एक दबंग आदमी खड़ा था। वह अन्दर आया और आते ही उसने किवाड़ बन्द कर लिये। और किवाड़ के सहारे खड़ा हो गया।

निरंजन की घबराहट और बढ़ी, वे भय से कांप रहे थे। यदि पार्वती आगन्तुक को देखकर न मुस्कराती, तो शायद निरंजन और भी भयभीत हो जाते।

"बैठो।" पार्वती ने कहा।

"नहीं, समय नहीं है,—उस पुरोहित का लड़का यहां क्या कर रहा है ?" उन्होंने पूछा।

निरंजन को कुछ ढाढ़स हुआ। यह कोई परिचित व्यक्ति ही हैं। पुलिस के अधिकारी ही सही, अमित्र नहीं।

"ये यहीं कहीं रहते हैं।" पार्वती ने कहा।

"कहीं टहलने निकले होंगे।" निरंजन ने कहा।

"हां, उनके साथ एक और वृद्ध भी थे।"

"हमारे रजिस्ट्रार होंगे।" निरंजन ने इस तरह शायद अपना परिचय

देने का प्रयत्न किया कि वे भी विश्वविद्यालय में एक पदाधिकारी हैं और उस कारण सम्माननीय।

"आपको मुझे यहां देख शायद आश्चर्य हो, मैं श्रीधर हूं।" [illegible] व्यक्ति ने कहना शुरू किया, "नहीं मालूम, पार्वती ने कभी आपसे मेरे [illegible] में कहा है कि नहीं। उसने आपके बारे में मुझे बहुत कुछ बताया है। [illegible] लिए मैं स्वयं आपको देख लेना चाहता था। पार्वती मेरी बहिन है।"

निरंजन ने पार्वती की ओर देखा जैसे पूछ रहे हों कि [illegible] क्यों नहीं बताया था। फिर सोचा कि होंगे कोई चचेरे-ममेरे [illegible] परिवार है, कितनी ही तरह के रिश्तेदार होंगे। किस-किस के [illegible] कब बतायेंगी? फिर हमने इन सबके बारे में पूछा ही कहां है? [illegible] मिलते हैं और हमारी अपनी बातों के लिए समय काफी नहीं रहता।

"पार्वती आपको बहुत चाहती है। क्यों?" श्रीधर ने कहा।

पार्वती झेंप गई।

"लगता है, तुम रात घर नहीं जा सकीं।"

न पार्वती कुछ बोली, न निरंजन ही।

"पार्वती कह रही थी कि आपके विचार क्रांतिकारी हैं। और [illegible] आप शौकिया क्रान्तिकारी नहीं हैं। नारे उगलने वाले सुधारक नहीं हैं। आप ऊंचे विचार वाले हैं। इंग्लैंड में पढ़े-लिखे हैं। जात-पात में [illegible] कोई विश्वास नहीं है। वर्णों में भी कोई विश्वास नहीं है। हम [illegible] व्यक्ति की खोज में थे, और पार्वती ने आपको खोज निकाला। [illegible] निकाला, संयोग से आप दोनों का मिलन हो गया—इससे पहले कि [illegible] आगे बढ़े, मैं आपसे मिल लेना चाहता था। काम इतना रहता है कि [illegible] ही नहीं मिलता।"

निरंजन निश्चेत से उनकी ओर देख रहे थे, वे इस तरह [illegible] थे जैसे सब कुछ पक्का कर दिया गया हो, और [illegible] हो। हां, असलियत भी तो यही थी।

"अच्छा, पार्वती, सब इन्तजाम हो जायेगा। [illegible] जी, आप पढ़े-लिखे ही नहीं, आदर्शवादी हैं, [illegible] चाहता हूं कि आप जैसे लोग उभरें और हम देश [illegible]

कह इस तरह रहे थे, जैसे वे बड़े बुजुर्ग हों, हालांकि उम्र में निरंजन से वे एक-दो वर्ष ही बड़े होंगे। आत्मविश्वास और साहस उनकी एक-एक बात से छलकता था।

"आपने यहां आने का समय भी ऐसा चुना कि हम आपकी आवभगत भी नहीं कर सकते।" निरंजन ने कहा।

"कोई बात नहीं, आवभगत तो उनकी की जाती है जो निमंत्रित होते हैं। मैं तो बिना सूचना दिये ही चला आया। मुझे माफी मांगनी चाहिये। अभी आपका घरबार भी कहां बसा है? यूं ही होटलों में गुजारा करते होंगे। अच्छा···" श्रीधर कुछ इस तरह बैठने लगे, मानो बैठना चाहते हों, और बैठ न पा रहे हों।

"देखो, पार्वती, गांव की तरफ न आना। शायद खतरा रहे। वहां जमीन हड़पने का आन्दोलन चल रहा है। जमीन वाले खतरे में हैं। खतरे में न पड़ना ही अच्छा है। समझे न। मैं आ ही गया हूं, इसलिए मैंने सोचा कि बताता जाऊं।"

"मैं जानती हूं।"

"तो मुझे इजाजत दो, सुखी रहो। न मालूम फिर कब और कहां मुलाकात हो।" श्रीधर ने कहा। और निरंजन को यह बात अजीब-सी लगी।

वे तुरत उठे। किवाड़ खोले। इधर-उधर बराण्डे में देखा और फिर इतमीनान से सीढ़ियों से उतर कर नीचे चले गये। वहां उनकी मोटर-साइकिल खड़ी थी।

वे अभी मोटर साइकिल पर ठीक तरह सवार भी न हो पाये थे, कि पहाड़ी के पीछे से, जहां रजिस्ट्रार और शास्त्री के मकान थे, किसी कार की रोशनी आती दिखाई दी। मोटर साइकिल पर श्रीधर चले गये। वह कार न होकर जीप थी और जीप में पुलिस के अधिकारी थे। और सबके हाथ में बन्दूक। निरंजन चकराये। आखिर बात क्या है?

वह मोटर साइकिल जो आगे गई थी, आगे जाकर गली में मुड़ी, और तेजी से घूम-घामकर फिर निरंजन के सामने से गुजरी। और जीप उसका पीछा कर रही थी। मोटर साइकलिस्ट लगातार जाते-जाते नोटों का

बण्डल फेंकते जाते, और न मालूम जीप क्यों पीछे रहती जाती थी।

देखते-देखते मोटर साइकलिस्ट तेजी से रफूचक्कर हो गया, और जीप में जाने कैसे यकायक गड़बड़ी हो गई। वह सड़क के किनारे जा खड़ी हुई। लुढ़कते-लुढ़कते बची। उसका एक टायर शायद बर्स्ट कर दिया गया था। यह सब कुछ ही क्षणों में विद्युत गति से हो गया। पीछा करने वाले, लुकछुपे, सवेरे के अंधेरे में, नोटों के बण्डल चुन रहे थे। निरंजन को घबराहट, भय, आश्चर्य, आतंक के कारण, दिग्भ्रान्त-सा हो रहा था।

उस समय उन्होंने बाहर न जाना ही [illegible] के अनुमान कर सकते थे कि जो आदमी उनके पास आता था, वह पुलिस का अधिकारी न था। हो सकता है, कोई क्रान्तिकारी हो हो—[illegible] का आन्दोलन, तुम न जाना, वह फिर क्यों आगाह कर रहा था? नहीं मालूम कौन है? पार्वती का भाई है? कहीं कोई डकैत तो नहीं है? जमीन के जाते ही, छोटे-मोटे जमींदार, डकैत भी हो गये थे। डकैती को राजनीतिक रूप देने के लिए वे राजनीतिक पार्टियों में भी शामिल हो गये थे। अगर प्रसादनन्द न जाते तो शायद आज वे भी इनके साथ होते।

"तुमने यह सब देखा न?" निरंजन ने पार्वती से पूछा।

"हां, यह सब उस शास्त्री की ही करतूत होगी।"

"अच्छा।"

"उसने ही पुलिस को इत्तिला दी होगी। बड़े चुगलखोर होते हैं [illegible] वह ही उनको पहचानता था।"

"तो यह तुम्हारे भाई हैं?"

'हां," फिर थोड़ा हिचकते हुए कहा, "मगर सगे नहीं।"

"तुमने पहले कभी बताया नहीं?"

"मौका ही न आया। फिर क्रान्तिकारी के बारे में [illegible] और बात भी थी। मैं हमेशा डरती रही, [illegible] की तरह···हां, खैर···"

"हां, तुम्हें मेरे बारे में भी सन्देह था? [illegible] पुलिस के अधिकारी नहीं हैं?"

"जी नहीं। पुलिस को चकमा देने के लिए [illegible]

आये थे। आखिर वे उनकी आंखों में पैसों की धूल झोंककर चम्पत हो ही गये।"

"लेकिन यों एक अपराधी की तरह आने-जाने की जरूरत ही क्या है?"

"उन्हीं के कारण ही तो हमारे इलाके में आतंक छाया हुआ है। जो क्रान्तिकारी आन्दोलन वहां चल रहा है, वे ही तो उसके नायक हैं।"

"वे?"

"अगर सब ठीक तरह चलता तो प्रसाद भैया भी इनमें होते। यदि कुंवर साहब की मृत्यु हो जाती—खैर, हटाइये। जमींदार घराने से संबंधित होने मात्र से तो हर कोई प्रतिक्रियावादी नहीं हो जाता।"

"हूं," निरंजन अभी सोच ही रहे थे कि किवाड़ पर फिर खटखटाहट हुई। किवाड़ खुला ही था। पुलिस के एक अफसर आये। वे जीप में न थे। सम्भव है कि जीप के अधिकारियों ने उनको सूचना दे दी हो। कोई बड़े अफसर लगते थे।

"माफ कीजिये, मैं आपको इतने सवेरे तंग कर रहा हूं। आपको हमारे साथ थाने आना होगा।"

निरंजन को काटो तो खून नहीं।

"सिर्फ आप ही। और आपको हमारी जीप आपके घर पहुंचा देगी।" पुलिस अफससर ने पार्वती को देखकर कहा।

"समय नहीं है, आपको तुरत चलना होगा।" पुलिस अफसर ने कहा।

निरंजन बाहर निकले, उनके आगे पुलिस के अफसर थे, और पीछे दो-तीन कान्स्टेवल। वे जीप में बैठ रहे थे और उगता सूर्य उनको विदाई देता-सा लगता था।

॥ तेईस ॥

विश्वविद्यालय के पास ही, पुलिस स्टेशन था। छोटा-सा। लेकिन निरंजन को वहां नहीं ले जाया गया। उनको पुलिस कमिश्नर के दफ्तर भी नहीं ले जाया गया। कहीं शहर से दूर कोई दफ्तर था, उसमें उनको एक कुर्सी पर बैठा दिया गया। वहां कोई ऐसी सामग्री न थी, जिससे यह सूचित हो सके कि वह पुलिस का दफ्तर था। बिल्कुल एकांत, कहीं वर्दी वाले कर्मचारी भी न थे। वे ही दो-चार अफसर थे जिनके साथ वे आये थे।

निरंजन के लिए यह नया अनुभव था। पुस्तकों में पढ़ा अवश्य था, लेकिन इस तरह और इतना जल्दी, उनको भी यह नग्न देखना होगा, उन्होंने कभी न सोचा था।

उनको वहां अकेले बैठा दिया गया। कोई आस-पास नहीं। पर वे जान सकते थे कि उनको देखा जा सकता था। वे बिना हिले-डुले बैठ भी न पाते थे। वे कुछ सोच भी न पा रहे थे। उनको मालूम था कि पुलिस कभी-कभी जानकारी पाने के लिए बड़ी जोर-जबरदस्ती करती थी, तरह-तरह से सताती थी। कहीं मुझे मारा-पीटा तो नहीं जायेगा। भारत में भले ही सुधार की आवश्यकता हो, पर वह अभी इतना गया गुजरा नहीं है, कि एक प्रोफेसर को मात्र सन्देह पर उचक्कों, चोरों की तरह पीटा जाय। किन्तु वे भयभीत थे।

थोड़ी देर बाद वे पुलिस अफसर फुरसत में आये। "आपको हमने यहां लाकर तकलीफ अवश्य दी। अच्छा होता अगर आप हमें यह मौका ही न देते, और अपने अध्यापन कार्य में ही रहते।"

निरंजन चुप रहे, वे जानते थे कि किस बात की यह भूमिका बन रही थी।

"विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने हमें सूचना अवश्य दी थी, लेकिन हम इस आशा में रहे कि आप नौजवान है, पढ़े-लिखे हैं, खुद सभल जायेंगे। आखिर रोटी का सवाल सबके सामने है ही न? हमें मालूम है कि आप घर के धनी नहीं हैं। इस नौकरी पर, आपको ही नहीं, आपके परिवार को

भी निर्भर रहना पड़ता है। है न ?"

निरंजन कुछ न बोले, पर जान सकते थे कि पुलिस वालों ने उनके बारे में काफी जानकारी हासिल कर ली थी।

"आप जब इंग्लैंड में थे, तब आपके क्या ख्यालात थे, क्या काम-काज थे, उनके बारे में भी हम अंधेरे में नहीं हैं। आप शायद साम्यवादी हैं, यह कहना अच्छा होगा—वामपन्थी हैं राजनीति में।"

निरंजन ने इसका भी कोई उत्तर न दिया।

"हमारे देश में, हर किसी को अपने राजनीतिक विचार, विश्वास रखने का पूरा अधिकार है। पुलिस का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। हम तो तभी आते हैं जब कि उन विचारों को लेकर हिंसात्मक संगठन होते हैं। आप शायद अभी किसी संगठन के सदस्य नहीं हैं।"

निरंजन ने सिर हिला दिया। वे कुछ न बोले।

"पर एक ऐसे लेखक वृन्द को आपका समर्थन प्राप्त है, जो समाज में विप्लव चाहता है, क्रान्ति चाहता है। आप उनकी एक सभा में भाग लेने भी गये थे। क्यों ?"

निरंजन ने इस बार भी सिर हिला दिया। उनको लग रहा था कि वे अफसर उनको वहां बिठाकर उनके बारे में जमा हुई पुलिस फाइल पढ़कर आये थे। पर बातचीत अभी तक इतनी शिष्ट थी कि उनको एक तरफ भय था, तो दूसरी तरफ कुतूहल भी।

"प्रसाद आपके मित्र हैं ?"

"हां, सहपाठी थे।"

"आप श्रीधर को कितने दिनों से जानते हैं ?"

"मैंने आज सवेरे से पहले उनकी शक्ल भी कभी न देखी थी, अगर उनका नाम यही है।"

"क्या आपको उनके कारनामे मालूम हैं ?"

"कहीं पढ़ा है कि प्रसाद के इलाके में, बहुत कुछ हिंसात्मक घटनायें हो रही हैं।"

"क्या आप जानते हैं, उनको कौन करवा रहा है ?"

"मैं नहीं जानता।"

"अब तो जान गये होंगे।"

"हां, हां, आपके इशारे से जान सकता हूं। लेकिन उनसे मेरा कोई परिचय नही है।"

"तब वह क्यो आपको देखने आये थे ?"

"मुझे देखने नही आये थे।"

"तो फिर किसको ?"

"अपनी बहन पार्वती को।"

"तो आपको मालूम है कि पार्वती उनकी बहन है ?"

"यह आज सवेरे ही मालूम हुआ। पहले नही मालूम था।"

"पार्वती ने कभी आपको नही बताया ?"

"जी नही।"

"हा, हो सकता है कि न बताया हो।" पुलिस अफसर स्वयं इस तरह सिर हिलाने लगे, जैसे कुछ सोच रहे हों—"आपका पार्वती से कितने दिनों से परिचय है ?"

"यही पाच-छ: महीने से, जब से मैं प्रसाद के यहा अतिथि था।"

"वह अक्सर मिलती होगी ?"

"अक्सर तो नहीं, मगर हम मिलते रहे हैं।"

"चिट्ठी-पत्री होती होगी ?" पुलिस अफसर के चेहरे पर मुस्कराहट खिली, और फिर वह मुरझा गई।

"नहीं, बहुत नही।"

"वह रात भर क्या आपके साथ थी ?"

"हा।"

"क्यों थी ?"

"यह मेरा निजी मामला है, जिसका सम्बन्ध न मेरे राजनीतिक विचारो से है, न मेरी आजीविका से ही।"

"हां, हां, मैं जान सकता हू।" वे इधर-उधर इस तरह देखने लगे जैसे ये प्रश्न करके वे कुछ फिसल गये हों।

"पार्वती श्रीधर की बहन अवश्य है, पर उसके क्या विचार है, और इसका आन्दोलन मे क्या हाथ है, यह हम जानते है, इसलिए ही आपसे

उनको घर भिजवा दिया था। क्या आप जानते हैं कि श्रीधर यहां से कहां गया था ?"

"जी नहीं, सवाल ही नहीं उठता। मुझे यह भी मालूम था कि वह कहां से आया था।"

"हूं !" पुलिस अफसर गुर्राये।

"मेरे बारे में आपके पास बहुत जानकारी है, फिर आपको यह भी पता होना चाहिए, कि मेरा उनके साथ क्या सम्बन्ध है।"

"हां, हां, इसीलिए ही तो हमने आपको यहां बुलाया था। हम जानते हैं कि पार्वती के साथ आपका कोई भी सम्बन्ध रहा हो, अभी आप सक्रिय रूप से श्रीधर के साथ नहीं हैं। इसलिए ही हम आगाह कर देना चाहते हैं। आप भारत में नये हैं। भारत की परिस्थिति नहीं जानते। यहां हिंसा की घटनायें होती हैं, पर उनके पीछे हमेशा कोई आदर्श रहता हो, यह नहीं कहा जा सकता, हर हिंसात्मक घटना किसी आन्दोलन का अंग भी नहीं है, यही है कि प्राय: एक घटना का दूसरी घटना से कोई सम्बन्ध नहीं होता। लेकिन श्रीधर एक आन्दोलन चलाने की कोशिश कर रहा है। ऐसा आन्दोलन जिसे कोई भी शासन बर्दाश्त नहीं कर सकता।

आप नवयुवक हैं, अभी-अभी नौकरी में लगे हैं, जीवन सामने है, हमेशा तोड़-फोड़ करके ही देश की सेवा की जा सकती है, देश की सेवा करना अपराध नहीं है। आप जैसे लोग देश के विज्ञान और ज्ञान के क्षेत्र में बहुत कुछ कर सकते हैं। आपके मां-बाप ने इसलिए ही पढ़ाया-लिखाया है कि आप देश के लिए कुछ सकारात्मक कार्य कर सकें। अगर हम सब अपना-अपना कार्य, कर्त्तव्य-निष्ठा से करें, तो बहुत सी वे विषमताएं रहे ही न, जिनको हटाने के लिए इस प्रकार के आंदोलन किये जाते हैं। मैं आपके बारे में जानता हूं, और यहां की परिस्थितियों के बारे में शायद आपसे ज्यादह जानकारी रखता हूं।

निरंजन चुप बैठे सुन रहे थे। वे इस स्थिति में न थे कि कुछ कह सकें। पर पुलिस अफसर की बातों में, प्रसाद की ही कुछ बातों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ रही थी।

इतने में एक आदमी ने बड़ी ट्रे में, कुछ खाने पीने की चीजें, चाय

वगैरह निरजन के सामने रखीं, और अफसर को एक चिट दी।

"आप बैठिए, खाइए, मैं अभी आया, फोन आया है।" पुलिस अफसर उठ कर चले गये।

निरजन को भूख थी, पर इस हालत में न थे कि कुछ खा सकें— उनको लग रहा था जैसे किसी ने उनको झकझोर दिया हो, या किसी ने उनको दया की बातों मे बींध दिया हो। यदि पुलिस अफसर उनको डांटते या डपटते, तो शायद सह लेते पर उनके मैत्रीपूर्ण और शिष्ट व्यवहार ने, उन पर एक मीठी-मीठी चोट की। वे शर्मिन्दा-से थे। उनको लग रहा था जैसे वे कोई स्कूल के बच्चे हों, और हेडमास्टर ने अच्छी खासी झिड़क बताई हो। और यह अनुभव ऐसा है, जो एक अध्यापक आसानी में सह नहीं पाता। वे पसीने-पसीने हो गये थे। वे धीमे-धीमे चुसकियां लेकर चाय पीने लगे।

पुलिस अफसर वापिस आये और मुस्कराते-मुस्कराते उनके सामने बैठ गये।

"आपके मित्र प्रसाद ने ही फोन किया था। पार्वती वहां पहुंच गई है।"

"आप प्रसाद को जानते है?"

"वह हमारा नजदीकी रिश्तेदार है, इसी कारण तो वह यहां फोन कर सका। पर...खैर..." पुलिस अफसर बोलते-बोलते गंभीर होकर सभले। "चाय पीजिए, मैंने उससे कह दिया है, आपको भूखा नहीं रखा जा रहा है। वे आपकी पैरवी कर रहे थे। हमने कहा कि हम तो सिर्फ आपको आगाह करने आए हैं, अभी तो कुछ नहीं हुआ है, अभी तो आप किनारे पर हैं, कहीं आवेश में इनके साथ वह न जायें और बरबाद न हो जायें, इसलिए हम आपको सावधान कर देना चाहते थे।"

निरजन चुप रहे। प्रसाद के फोन ने और इनकी बातों ने तो उनके घावों पर नमक-सा छिड़क दिया था। आखें भर आयी। प्रसाद का वह एक और रूप देख रहे थे।

"आप बहुत लोकप्रिय अध्यापक मालूम होते हैं। यह लोकप्रियता यदि आपके अध्यापन के कारण हो तो मैं बहुत खुश हूं। हम चाहते है कि

हमारी जाति में कुछ लोग ऐसे आये, जो ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्रों में चोटी पर पहुंचे।"

निरंजन चौंके, तो ये भी हमारी ही जाति के हैं, इसी कारण यह शिष्ट आदरपूर्ण व्यवहार था। और कोई होता तो चौबीस घंटे लॉक-अप में डाल देने के बाद कुछ बोलता। जाति···जाति—वे कुछ सोच नहीं पा रहे थे। पुलिस अफसर की सहृदयता से वे अभिभूत थे।

"आइए, हम आपको वापिस छोड़ आयें। नहीं तो आपके विद्यार्थी हमारे विश्वविद्यालय के पुलिस स्टेशन को ही तोड़-फोड़ कर रख देंगे। वहां खासी भीड़ जमा हो गई है। पथराव हो रहा है। फिर न मालूम क्या हो।"

निरंजन उनके साथ बाहर आये। उनके पास ही वे जीप में बैठ गये। तब उनको पता लगा कि उनको शहर से दूर क्यों लाया गया था। यदि वे विश्वविद्यालय के पास वाले स्टेशन पर ले जाये जाते तो शायद दंगा ही हो जाता। एक तरफ पुलिस अफसर का सहृदय व्यवहार था, और दूसरी ओर विद्यार्थियों का भावात्मक विस्फोट। उनको तुरत यह भी एहसास हुआ कि यदि विद्यार्थी उनके विचारों से परिचित न होते, तो उनकी गिरफ्तारी और रिहाई पर इतना उत्साह न दिखाते। यह एक और जिम्मेवारी थी। वैसे ही निरंजन दिग्भ्रमित से थे, अब तो वे निश्चेष्ट से हो रहे थे।

पुलिस स्टेशन के पास ही जीप रुकी। विद्यार्थी उनको जीप से उतरते देख, इस प्रकार के नारे लगाने लगे जैसे उनके दबाव के कारण ही निरंजन को इतनी जल्दी रिहा कर दिया गया हो। वे उनको कंधों पर उठा कर ले जाना चाहते थे, किन्तु निरंजन ने पैदल ही घर जाना चाहा। जाते-जाते नमस्कार करके उन्होंने पुलिस अफसर से विदा ली।

निरंजन इस अनुभव के बाद स्तब्ध थे। अपने कमरे में जाकर बीयर की बोतल पर बोतल पीने लगे।

॥ चौबीस ॥

कितने ही विद्यार्थी उनसे मिलने आये, कितने ही पड़ोसी आये, और निरंजन उन सबसे स्नेहपूर्वक मिले । परन्तु उनके मन में कहीं गिला था कि जो बात करीब-करीब सारा शहर जान गया था, क्या उन साथियों को खबर न मिली होगी, जो साहित्य द्वारा, समाज में क्रान्ति पैदा करने की कोशिश कर रहे थे, और जिनकी सभा संसदों में वे प्रायः उपस्थित हुआ करते थे । उनमें से कोई भी तो नहीं आया । यहां जान से खेला जा रहा है, और वे ऐसे बैठे हैं जैसे नशे में हों ।

वे कभी अपने अनुभव के बारे में सोचते, तो कभी पार्वती के बारे में, प्रसाद के बारे में जब ऐसी घटनायें होती हैं, तो वे मन को इस तरह घेर लेती हैं कि व्यक्ति कुछ और सोच नहीं पाता । वे ही बातें दिलो-दिमाग में चक्कर काट रही थीं । पुलिस अफसर, सुधीर, पार्वती और प्रसाद ।

आठ-नौ बजे के करीब प्रसाद आये । उनके साथ कार में पार्वती भी थी । निरंजन उससे मिलने को आतुर थे । प्रेम की क्षुधा ही ऐसी है, कि घुस-घुस कर और जगती है । कोई भी बात हो, सदर्भ हो, अगर प्रेम हो, तो हर चीज युक्तियुक्त-सी मालूम होती है । जवानी में तो बड़े से बड़े आदर्शवादी प्रेम के मामले में कमजोर पाये जाते है ।

पार्वती कमरे में घुसी तो उसकी आखों में आसू थे । होठ हिल रहे थे । प्रसाद उनका हाथ पकड कर बिस्तर पर बैठ गये । अव्वल तो वहां कोई कुर्सी न थी, और जो थी उस पर पहले ही एक सज्जन बैठे थे ।

"उन्होंने सताया-वताया तो नहीं था ?" प्रसाद ने पूछा ।

"नहीं तो ।"

उनको इस आत्मीयता से बातें करते देख, पार्वती को वहां उपस्थित पा जो दो-तीन लोग वहां थे वे नमस्कार करके कमरा खाली करके चले गये ।

"मैंने उनको फोन कर दिया था, वरना ये पुलिस वाले सिर्फ बातचीत और तहकीकात तक ही सीमित नहीं रहते । खैर ।'

निरंजन को उनका यह याद दिलाना कि उनकी कृपा से वे छोड़ दिये गये थे, वहुत ही अशिष्ट-सा लगा। लेकिन कह भी क्या सकते थे।

निरंजन चुप रहे, वे सोच रहे थे कि वे पूछेंगे, कि पार्वती यहां क्यों थी, उसका उनके साथ क्या सम्वन्ध था, क्या मित्रता का यह अनुचित लाभ नहीं है ? आदि आदि। कितने ही संदेश और प्रश्न उनके मन में उठ रहे थे। किन्तु प्रसाद ने कुछ भी न कहा।

"तुम इस देश के वारे में धीमे-धीमे वही राय रखने लगोगे, जो मेरी इस समय है, वहुत उलझी हुई हैं यहां की समस्यायें। अतीत जिस तरह हमारे वर्तमान को जकड़े हुए है, और जिस तरह के धार्मिक मूल्य और सामाजिक परम्परायें हमारे सारे चिन्तन को वांधे हुए हैं, इस तरह की पेचीदा स्थिति में, कोई भी ऐसी कार्यवाही नहीं की जा सकती, जिसकी तुम कल्पना कर रहे हो।" प्रसाद ने कहा।

"यह तो तुम पहले भी कह चुके हो, आज तुम इतने पहले कैसे उठ गये ?" निरंजन ने वातों का रुख वदलने की चेष्टा की।

"इसने आकर उठा दिया था।" प्रसाद ने पार्वती की ओर इशारा किया, "अगर न उठता तो न मालूम क्या होता ?" प्रसाद ने फिर हिरा-फिरा कर अपना एहसान दिखाना चाहा।

"आपने कुछ खाया-पिया कि नहीं ? हम कार में कुछ लाये हैं, चाहें तो हमारे साथ चलिए।" पार्वती ने अपने को संभालते हुए, कांपती हुई आवाज में कहा।

"नहीं, पुलिस वालों ने मुझे खिला-पिला दिया था..." निरंजन ने कहा। उन्होंने चाय ही पी थी। भूख ही न थी।

"रात तुम ठीक तरह सो भी न पाये होगे, आराम से सोओ। कोई वात नहीं, अच्छा अनुभव है। आरम्भ में ही इस तरह के अनुभव हो जायें तो खराव नहीं है। रास्ते में अगर वहुत दूर चले जायें और मालूम हो कि गलत रास्ते पर हैं तो न पीछे जाते वनता है, न आगे ही।"

"तुम्हारी सलाह है कि मैं भी तुम्हारी तरह पीछे हट जाऊं ?" निरंजन ने कहा। इसमें व्यंग्य था और अप्रिय सत्य, और उनकी निजी अनिश्चितता भी।

"नहीं, तुम सयाने हो, और नई जिम्मेवारियां भी सिर पर लेने जा रहे हो—उन्होंने एक बार पार्वती की ओर देखा और फिर निरजन की ओर। "तुम ही सोच लो, परिस्थितियां मनुष्य से बहुत कुछ कराती हैं, गिरना खराब नहीं है, पर गिरे रहना अच्छा नहीं है, खैर,···तुम आराम करो, फिर मिलेंगे, पार्वती तुम आओगी?···नहीं, तुम इनको आराम नहीं करने दोगी, चलो, मेरे साथ आओ।"

पार्वती के लिए यह आज्ञा थी। वह निरंजन को देखती-देखती कमरे से बाहर, प्रसाद के साथ चली गयी।

निरंजन पार्वती से बहुत कुछ जानना चाहते थे। श्रीधर के बारे में उनका कुतूहल बढ़ गया था। यह भी क्या भाई हैं, जिनका जिक्र प्रसाद भूल कर भी नहीं करते थे। खैर, सिवाय अपने के वे जिक्र ही किसका करते हैं? बहुत ही स्वकेन्द्रित व्यक्ति हैं।

निरंजन ने सोचने की कोशिश की। सो नहीं पाये। इस सारे अनुभव में, उनको रह-रह कर अपने मां-बाप याद आ रहे थे। कभी उनके पिताजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में स्वयंसेवक की तरह हिस्सा लिया था। गांव में पुलिस की लाठी खायी थी। हर राष्ट्रीय नेता के उस तरफ आने पर उनका भाषण सुनने जाया करते थे, लेकिन जब परिवार का भार बढ़ा तो वे इस सबसे विरक्त हो गये। क्यों न होते? वे विशेष पढ़े-लिखे। न थे कोई संपत्ति न थी। कोई प्रभाव न था। राष्ट्रसेवकों ने भी उनको एक नाचीज समझा। यह भी एक कारण था कि वे अपने लड़के को वह सब देना चाहते थे जिससे वे स्वयं वंचित रहे थे। प्रसाद को ही बुरा-भला कहने से क्या फायदा। उनके पिता का ही उदाहरण था।

उन्होंने अपने पिता को एक-दो बार चिट्ठी लिखने का प्रयत्न किया। कुछ लिखा भी, पर पत्र पूरा न कर सके। बताने वाले उनको बता ही देंगे। मैं क्यों व्यर्थ लिखकर उनका मन दुखाऊं? उनको यह पसन्द नहीं है कि मैं सिवाय अपने काम के किसी और काम में कोई दिलचस्पी दिखाऊं? वे तो दूध से इस तरह जले हुए हैं, कि छाछ भी फूंक-फूंककर पीते हैं।

अच्छा ही था कि चाहते हुए भी उनको एकान्त नहीं मिल रहा था। कोई न कोई कमरे में आ जा ही रहा था। शास्त्री भी आया। निरंजन को

शक था कि उसने ही पुलिस को इत्तिला दी थी। पर कोई सबूत न था। और आये हुए आदमी को कैसे जाने के लिए कहा जाये ? आते ही उसने कहना शुरू किया, "आप तो बहुत किस्मत वाले हैं, वरना ये लोग इतने जालिम हैं कि कुछ न पूछिए…"

"हूं।"

"आप क्या श्रीधर को नहीं जानते थे ?"

"नहीं, तो तुम्हें कैसे मालूम कि वे यहां आये थे ?"

शास्त्री कुछ सकपकाये। नीयत खराब हो, और अक्ल कम, तो आदमी को जानने-पहचानने में देर नहीं लगती। उनका शक पक्का हो रहा था। शास्त्री ने कहा, "लोगों के मुंह सुना था।"

"लोगों को तो इतना ही मालूम है कि मैं पुलिस स्टेशन ले जाया गया था पर क्यों ले जाया गया था, यह तो सिवाय आपके कोई नहीं जानता मालूम होता। कितने ही लोग आये हैं…"

"जी नहीं, कुछ लोग जानते हैं।" शास्त्री फिर ऊपर-नीचे देखने लगे। चुगली करना जानता था। पीठ पीछे पैंतरे खेलने वाला आदमी था। सामने निरा गधा था। यह निरंजन की धारणा बन रही थी। "आप क्या श्रीधर को जानते हैं ?"

"वे हमारे ही गांव के हैं, हर कोई उनके बारे में जानता है। वहां जो कुछ खलबली, उथल-पुथल, उपद्रव होते हैं, वे सब इन्हीं की देख-रेख में होते हैं। कितना ही आतंक है इनका। पुराने जमाने के बड़े-बड़े सामन्त इनका नाम लेते ही थर-थर कांपते हैं।"

"हूं, यह तो पुलिस वाले भी जानते हैं।"

"इन्हीं की वजह से मेरे पिताजी जेल में हैं, करतूत इनकी और सजा उनको। पुलिस वाले जो न करें वह कम।

"हूं, मैं जानता हूं…" निरंजन ने दीवार की ओर मुंह करके कहा।

"मैं आपको एक बात बता देना चाहता था। यह तो शुरुआत है। रजिस्ट्रार साहब आपके बारे में, न मालूम क्या-क्या सोच रहे हैं। मैंने उनको बताया कि आप जैसा अंग्रेजी का आदर्श अध्यापक इस प्रांत में दूसरा कोई नहीं है…"

"हा, तभी लोगों ने अंग्रेजी के खिलाफ आन्दोलन शुरू किया हुआ है।"

"शुरू तो यूं ही हो गया था, जाने अब उसमें और कितने आन्दोलन आ मिले हैं। बात बहुत उलझ गई है। आप जानते ही हैं। आप नये हैं। मैं पुराना हूं, और आपके विभाग में ही हूं। इसलिए मेरा कर्तव्य है कि आपके बारे में, मेरे होते बड़े अधिकारियों के मन में कोई गलतफहमी न घर कर जाए।

"हां, हा बड़ी मेहरबानी..." निरंजन ऊब गये थे। वे इस तरह के दुमुंहिया के मुंह नहीं लगना चाहते थे।

"आप क्या घर नहीं जा रहे हैं?" उसने पूछा। निरंजन न जान सके कि यह प्रश्न औपचारिक था या इसके पीछे भी कोई भेद था।

"नहीं, अभी तो कोई इरादा नहीं है। माफ कीजिए, मुझे कुछ काम है।" वे बगल के गुसलखाने में चले गये। और शास्त्री आंखें बड़ी-बड़ी करके, मुस्कराते-मुस्कराते, दो विपरीत भावनाओं को व्यक्त किये, बाहर चले गये।

अगर कभी निरंजन अपनी सहृदयता के कारण शास्त्री को नादान भी समझते थे, तो अब वह उनको आस्तीन का सांप समझने लगे थे। ऐसे भी लोग हैं, और ऐसे लोगों की वजह से ही दुनिया ऐसी है। वे सबके काम आते हैं, और सबको फुसला कर अपना काम सीधा करते हैं। मैं भी इसका उपयोग कर सकता हूं, दुधारी आदमी है, मगर काटता तो है, खुंडा नहीं है।

॥ पच्चीस ॥

कभी किताबों में, निरंजन ने पढ़ा था कि मुसीबतें अकेली नहीं आती हैं तो सोचा था कि आकस्मिकता और संयोग की भी सीमा

जब उनका उन पर ही तांता बंध गया तो वह उक्ति ठीक लगी।

विश्वविद्यालय के वातावरण में तेजी आ रही थी। इतनी सारी समस्याएं और मांगें थीं कि उनका कोई हल नहीं दिखाई दे रहा था। विश्वविद्यालय के अधिकारी भी अपने हठ पर थे। नियन्त्रण का हवाला देकर वे कह रहे थे कि विद्यार्थियों की मांग मान लेने का अर्थ था नियन्त्रण को नमस्ते दे देना।

निरंजन विश्वविद्यालय में ही विश्वविद्यालय की बातों में उलझे रहते यदि उनके घर से तार न आता कि उनकी बहिन बुरी तरह बीमार थी। जान खतरे में थी। उनके पिता ने उनको तुरत बुलाया था। यदि बुलाया न होता, और यदि बीमारी की ही बात होती तो वे शायद फौरन जाते भी न।

वे घर गये, घर का नजारा अजीब था। जब घर में कोई बीमार होता था तो कई देखने आ जाते थे। घर के बाहर भीड़ रहती थी। घर में सिवाय दो-चार लोगों के कोई न था। निरंजन को यह असाधारण लगा।

वे अन्दर गये, तो पिता गम्भीर, मौन पिछवाड़े के बराण्डे में बैठे थे। उनके साथ निरंजन की छोटी बहन थी। वह बिलख रही थी, पर पिता जी उसको सहलाते नहीं लगते थे। भाई उनके पीछे खड़ा था। वह भी चुप। चेहरे पर एक विचित्र-सी जमी हुई चिन्ता। एक और छोटा भाई था, वह आंगन में पेड़ के नीचे, सिर पर हाथ रखे, मुंह नीचे किये बैठा-बैठा गीली मिट्टी कुरेद रहा था। सब जगह सन्नाटा।

निरंजन को देख, जो जहां था, वह वहां स्तब्ध रहा। न भाई अगवानी करने के लिए आया, न पिता ही। वे चुप थे। कहीं अन्दर से मां के सिसकने की आवाज आ रही थी। ऐसा लगता था जैसे कोई चलता परिवार एक बिन्दु पर आकर रुक गया हो।

निरंजन अनुमान कर सकते थे कि उनकी बहिन उनके आने से पहले ही गुजर चुकी थी। गुजरी ही नहीं थी, उसका दहन संस्कार भी हो चुका था। वे माता के पास गये, तो वे एकदम फूट सी पड़ीं।

"बेटा, बहिन नहीं रही, तुमने उसको खो दिया। वह चली गई, वह··· वह···" वे जोर-जोर से रोने लगीं। कभी निरंजन का माथा सहलातीं,

ो कभी अपनी आंखें पोंछती। उनको रोता देख निरंजन भी बिलखने लगे। वहां अधिक देर न ठहर सके। बाहर चले आये। सड़क पर जाकर पास ाली एक पुलिया पर बैठ गये। वहां दो-चार रिश्तेदार और बैठे थे। वे भी हन की मौत सुनकर आये थे।

निरंजन पुलिया के सिरे पर थे। रूमाल मुख पर रखकर, वे अपना ोक और विलाप रोकने का प्रयत्न कर रहे थे। जोर से रो नहीं सकते थे। रिवार से भले ही वे दूर रहे हों, रक्त का सम्बन्ध ऐसा है कि संकट के मय, खुद आसुओं में, सहानुभूति में बोलता है।

थोड़ी देर बाद उनके एक मामा उनके पास आये। "अभी आये हो ?"

"हां।"

"हमारे आने से पहले ही सब कुछ खतम हो गया था। तार तुम्हें कब मेला ?"

"कल रात।"

"तब तक दहन संस्कार भी हो चुका था। तुम्हारे पिता जी यह न ाहते थे कि तुम भागे-भागे आओ, आखिर जो होना था वह पहले ही हो या था।"

"अचानक कैसे ?"

"जब मौत आती है, तो हमेशा बिस्तर पर ही नहीं आती।"

"जवान थी, स्वस्थ थी, फिर कैसे ?"

"भगवान जिसको ले जाना चाहते है, ले जाते समय यह सब नहीं देखते···" उन्होंने अपनी ग्रामीण सूझ-बूझ के अनुसार कहा।

"हूं," निरंजन और कुछ न पूछना चाहते थे। कारण कुछ भी रहे हों। सच यह था कि उनकी बहिन अब इस संसार में न थी। वे चाहते थे कि उस वातावरण से कहीं बाहर निकलें। वे कर ही क्या सकते थे। किसी के सामने अपनी सहानुभूति प्रकट नहीं कर सकते थे, न यह ही चाहते थे कि कोई उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करे। परिवार के सब लोग अपने-अपने दुख में थे। इतने मारे थे, सब एक दूसरे का दुख बांट से रहे थे। लेकिन इस बटवारे से, जैसा कि अक्सर होता है, वह दुखबढ़ ही रहा था, कम नहीं। क्या करते ? घर में पिता जी थे। जो कुछ करना था वे करवायेंगे—

लेकिन वे कहीं जा भी न सकते थे।

यह सोचकर कि रुपये की जरूरत होगी, वे अपने मित्रों से कुछ उधार भी ले आये थे। जेब में पैसा था। उसे रखने वे फिर घर में गये।

घर की वही हालत थी। सब चुप। उनकी एक मौसी ने कहा, "जो होना था वह तो दो दिन पहले ही हो गया था। दूर से आये हो, कुछ खाया-पिया कि नहीं ?"

"क्या जल्दी है ?"

"कुछ खा लो, वरना कैसे···" उन्होंने मनाया।

"बाद में देखेंगे।" निरंजन ने कहा। जब से वे पुलिस द्वारा ले जाये गये थे तब से उन्होंने ठीक तरह से खाया भी न था। भूख थी, पर उस हालत में कैसे खाते ? चाहते थे कि पिता जी से बात कर लें। लेकिन वे मूक थे।

दुपहर बाद सबने चुपचाप थोड़ा बहुत भोजन निगला। जाने वाले चले जाते हैं, जिनको रहना है उनको तो रहने के लिए खाना ही पड़ता है। दुख में भी पेट भरना होता है। मौत तो निरंजन ने और भी देखी थी, पर इस तरह की चुप्पी वे पहली बार देख रहे थे। इतनी जल्दी, इतने अनुभव हो रहे थे कि उनकी सहज भावुकता भी कुछ-कुछ सूखती-सी लगती थी।

दबाने वाली, बोझ वाली चुप्पी में उन्होंने दो दिन काट दिये। सोचा था कि पिता जी बुलायेंगे, पर उन्होंने बुलाया ही नहीं। माता जी इस तरह रो रही थीं कि उनको देखते ही वह और रोना शुरू कर देती थीं। वे उनके पास भी नहीं जा पाते थे। छोटे भाई उनके सामने आते कतराते थे। वह उनके लिए इतने बड़े थे कि वे उनको सम्मान की दृष्टि से देखते थे। उनके बोलने पर ही कुछ बोलते थे।

शाम को वे घर से बाहर निकले, और कच्ची सड़क से गांव की ओर न जाकर गांव के बाहर जाने लगे। उनका घर गांव से कुछ बाहर था। उनकी अपनी जमीन के पास। गांव तो बहुत पिछड़ा हुआ था, मुश्किल से बीस लोग होंगे, जो पढ़े-लिखे होंगे। सिवाय एक-दो परिवार के और कोई वहां उनसे सम्बन्धित भी न था। और वे उन्हीं के घर में थे।

थोडी दूर पर एक बड़ी नहर थी। उसी नहर के कारण वहां भूमि सोना उगलती थी। थोडी जमीन वाले मेहनत कर-कराके आर्थिक दृष्टि से मध्यम वर्ग के हो सकते थे। अगर और जगह पानी की कमी से खेती नष्ट होती थी, तो यहा प्राय: पानी की अधिकता से होती थी।

वे नहर के किनारे जा बैठे। कभी पानी में ढेले फेंकते तो कभी पास के पेड़ पर। नहर के इस तरफ और परली तरफ दूर तक हरा धान लह-लहा रहा था। हवा में एक मीठी-मीठी खुशबू थी, यह मानवीय श्रम और सम्पन्नता का चित्र था। सम्पन्नता में भी मनुष्य व्यक्तिगत दुख और सुख से मुक्त नहीं हो पाता, और उनका इस बाह्य सम्पन्नता से कोई सम्बन्ध नहीं है।

वे बैठे थे कि उनका बचपन का साथी उस तरफ आया। उसके खेत नहर के पास थे।। सम्भव है, उसने उनको दूर से देखा हो।

"कब आये?" उसने पूछा।

"दो-तीन दिन हो गये।"

"अच्छा," निरजन जो अपने भाइयो के लिए सम्माननीय हो गये थे, बचपन के इस दोस्त के लिए, जिसने अपनी पढाई प्रायमरी स्कूल के बाद छोड दी थी, मात्र बचपन के मित्र थे। वही आत्मीयता। वही स्नेह। जब कभी वे गाव आते, वह उनसे मिलने आता। गाव मे रह ही कितने लोग गये थे जो उनको बचपन से उतनी नजदीकी से जानते थे।

"शहर मे सब ठीक है न?" ९

"है।"

"बहन की मौत के सिलसिले मे आये होगे।"

"हां।"

"आजकल दिन बहुत बुरे हैं, दुनिया बहुत बिगड गई है। कह नहीं सकते कि कब क्या हो और किस तरह हो। तुम्हे मालूम हो गया होगा। बड़ी अनहोनी हुई।"

"क्यों, क्या हो गया?"

"यही, बहन की मौत।"

"हूं।"

"कुदरती मौत होती तो दो-चार दिन रो लेते, और सब करीब-करीब ठीक हो जाता। ऐसी मौत होती है, तो सारी जिन्दगी एक तरह की फिक्र में, शर्म में घुटे-घुटे, दुख में काटनी होती है। न किसी से कुछ कहते बनता है, न मन में ही रखते बनता है।

निरंजन उसकी आदत जानते थे, एक बार जब बात शुरू हो जाती थी तो पाल वाली किश्ती की तरह चलती जाती थी।

"भाई, गलती हमारी बहिन की थी, और शायद हमारी और तुम्हारी भी। जब एक गलती करता है, गलती करने वाला ही गलती के लिये जिम्मेवार नहीं होता है, वे सब भी होते हैं जो उसके आस-पास होते हैं, जो उसको गलती करने से रोक सकते थे, या जो ऐसी परिस्थितियां आने ही न देते, जिनके कारण गलती हुई हो—क्यों?" वह गौर से निरंजन की ओर देखने लगा। और निरंजन कलेजे को पत्थर बना रहे थे, जाने क्या सुनना पड़ जाये।

"मेरा मतलब है, अगर वक्त पर शादी कर दी जाती तो आज हमें यह सब न देखना पड़ता।"

अभी वह कह ही रहा था कि निरंजन का मन कहीं उनको दोषी ठहरा रहा था। वह 'अनहोनी' क्या हो सकती थी। इसका भी वे अनुमान करने लगे थे। वे चुप थे।

"उस विचारी को पीटने-पाटने से क्या फायदा? जब गलती हमारी है।"

"क्या?" निरंजन चौंके।

"तुम्हारे यहां, याद है, एक नौकर था, वेंकट, चमार। घर वाला है। शादीशुदा है, उसको यह नहीं करना चाहिये था। चमारों की यूं ही हिम्मत नहीं हो जाती, किसी के हौसला देने पर ही होती है।"

"हूं।"

"मगर एक बात भी है, मैं नहीं जानता कि यह तुम्हारी किताबों में लिखा है कि नहीं, जब जवानी आती है, तो उस उफान के साथ अच्छी अक्ल नहीं आती, जब दौरा आता है, तो हम वह उठते है, यह भी नहीं सोचते कि किधर जा रहे हैं और भटक जाने का क्या नतीजा होता है?"

निरंजन को संदेह हुआ कि कहीं पार्वती और उनके बारे में, खबरें उड़ती-उड़ती यहां तक तो न पहुंच गई थीं। भारत बहुत बड़ा है, किन्तु इन बातों में इसकी सीमाएं बहुत छोटी हैं। "हूं !"

"हमारी बहिन का और उसका सम्बन्ध हो गया।"

"हैं !" निरंजन पर बिजली गिरी। '....' उसके साथ ? चमार के साथ ? नौकर के साथ ?

"हां, उसको पीटा गया, खैर, उसकी मौत के पाप से तो बचे, बिचारा गांव छोड़कर भाग गया है।"

"हूं।"

"और जब सम्बन्ध होता है, तो बिना शादी के भी गर्भ हो जाता है। हो गया...।"

"हूं।" एकसाथ क्रोध, ग्लानि, आश्चर्य और भय इस 'हूं' में गूंज रहे थे।

"पिता जी को मालूम हो गया, हम तो पहले भी जानते थे, पाप छुपता नहीं है, वह पेट पर चढ़ कर बोलता है।"

"हूं !"

"बहिन से पूछताछ की गई, क्या कहती ? शादी का सवाल ही न था। वह उस तरह रह भी न सकती थी, छोटी बहिन का क्या होता ? एक क्वारी तो बिगड़ गई, दूसरी भी क्वारी रहती। और बिगड़ गई, तो परिवार का क्या होगा ?"

"हूं !"

"बहिन ने आत्महत्या कर दी, एंड्रीन खा ली, और सुना तुमने, जब इतना जान गये हो, तो यह भी बता दूं, कहते हैं, पिता जी भी यही चाहते थे, वह तो गई, और पिता जी जी-जी कर हर मिनट मरेंगे, बुढ़ापे में उनको सब देखना पड़ा।"

निरंजन को पता लगा, लोग क्यों चुप थे। कोई कह भी क्या सकता था ? वे सिसकियां भर-भर कर रोने लगे। उनका दोस्त उनको घर की ओर ले जाने लगा। सारा भार उसी पर था। बात तो मालूम होती ही, पर जाने किस तरह वह कह दी जाती, और उसका क्या बुरा असर उसके दोस्त पर

पड़ता, इसलिए उसने ही यह सब कह दिया था।

"वहिन तो गई—एक तरफ यह दुख, और दूसरा यह कि वह इस तरह गई। अगर मैं उस दिन पिता जी की बात मान लेता, शादी करा लेता, तो वहन भी आज कहीं घरवाली होती।…" यही चिंता पश्चात्ताप के रूप में उनके मन में घर कर गई।

तेरहवीं तक वे घर में, गांव में रहे, और इसी चिन्ता में रहे। विश्वविद्यालय में काम न था, गांव में रह सकते थे। पर क्या मुंह लेकर रहते? सारा गांव उन्हीं की ओर अंगुली दिखा कर उनको ही दुत्कारता सा

॥ छब्बीस ॥

निरंजन पारिवारिक चिन्ता से बचने के लिए विश्वविद्यालय चले आये थे।

वहां की स्थिति जो कई दिन से विषम होती जा रही थी, और विगड़
. ी, ऐसा लगता था, विस्फोट वहुत लम्बा खिंच गया था। राजनीतिक
टयों के हस्तक्षेप से समस्याओं में और अनेक बल आ गये थे।

यह निश्चय किया गया था कि अनिश्चित काल के लिए, अथवा जब तक स्थिति साधारण नहीं हो जाती, तब तक विश्वविद्यालय बन्द ही कर दिया जाये। प्रथम कदम के रूप में विश्वविद्यालय का होस्टल बन्द कर दिया गया था। विद्यार्थी कम थे। पर जो थे वे जिद पर थे, और विश्वविद्यालय के उन वर्गों में थे, जिनके कारण इतना बलवा मचा हुआ था।

होस्टल बन्द हुआ कि नहीं, वे बड़े-बड़े जत्थे बना-बनाकर बाहर निकले, कई जगह लूट हुई। विश्वविद्यालय के रिकार्ड के आफिस में भी आग लगा दी गई। ऑडिटोरियम जो हाल में ही बना था, जला दिया गया। विश्वविद्यालय के कर्मचारियों को पीटा गया। रजिस्ट्रार को घेरा

गया, तंग किया गया। गाली-गलौज हुई।

पुलिस तो पहले ही थी। रिजर्व पुलिस बुलाई गई, और जबरदस्ती होस्टल के विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय के प्रांगण से बाहर भेज दिया गया। वे विश्वविद्यालय के बाहर हो-हल्ला करने लगे। अश्रु गैस छोड़ी गई, लाठी चार्ज हुआ। तब जाकर स्थिति कुछ काबू में आयी।

सुना गया कि शास्त्री शहर में पीटे गये। और दो-चार अध्यापकों को भी, जो *विश्वविद्यालय के उच्च अधिकारियों के पिट्ठू समझे जाते थे*, अपमानित किया गया। कई को मारा गया। जो बातें अब तक विश्वविद्यालय तक ही सीमित थीं, उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाएं बाहर भी होने लगीं। पुलिस ने कई सामाजिक कार्यकर्ताओं को भी गिरफ्तार किया था।

निरंजन पर शक किया जा रहा था। हालांकि निजी परिस्थितियों के कारण, वे इन बातों के बारे में, शनैः-शनैः तटस्थ होते जा रहे थे। यह भी सुना गया कि उनके गिरफ्तार होने की आशंका थी, इसलिए ही वे फरार हो गये थे। बेसिर-पैर की उड़ाई जा रही थी।

प्रिन्सिपल साहब ने उनको अपने कमरे में बुलवाया। सिवाय उनके और एक क्लर्क के वहां और कोई न था। वे कहने लगे, "मैं पूरे तीस वर्ष से पढ़ा रहा हूं, और पिछले दस वर्ष से प्रिन्सिपल का काम कर रहा हूं, पर कभी इस तरह की स्थिति मैंने नहीं देखी। कई पीढ़ियां विद्यार्थियों की, मेरी निगरानी में गुजरीं, पर जो पीढ़ी अब गुजर रही है, इस तरह की पीढ़ी मैंने कभी नहीं देखी।"

निरंजन अलमारियों में रखी पुस्तकों की ओर इस तरह देख रहे थे जैसे प्रिन्सिपल के 'प्रवचन' से उनका कोई वास्ता ही न हो।

"पहले जब कभी इस तरह की घटनाएं होती थीं, तो उपाध्याय वर्ग हमेशा अधिकारियों का साथ देता था। और जल्दी ही परिस्थिति काबू में आ जाती थी। अब स्थिति वह नहीं है, कई उपाध्याय ही विद्यार्थियों को उकसा रहे हैं। वे ही नहीं, बाहर के नेता भी विद्यार्थियों की बातों में टांग अड़ा रहे हैं।...आप शायद यह जानते ही होंगे।"

"जी, मैं भी कुछ इस तरह की बातें सुन रहा हूं।"

"साफ है कि इस तरह की स्थिति ज्यादा दिन नहीं चल सकता। यह वविद्यालय है, हड़ताल सिखाने का अखाड़ा नहीं है। विश्वविद्यालय अधिकारी कड़ी कार्यवाही करना चाहते हैं।"

निरंजन ने तब भी कोई दिलचस्पी न दिखाई, जैसे ये बातें उन्होंने ई बार सुनी हों।

"आपके बारे में कई शिकायतें पहुंची हुई हैं। अधिकारियों ने बड़े र्य से, बड़े सब्र से काम लिया। इस तरह की कड़ी कार्यवाही मैंने अपने तीस वर्ष के अनुभव में किसी के बारे में कभी नहीं की। और मुझे बहुत दुख हो रहा है कि मुझे यह आपके बारे में ही करना पड़ रहा है।"

निरंजन चौंके। कोई और बला आ रही थी। वे पहले चोट से ही अभी तक नहीं संभले थे। प्रिन्सिपल ने क्लर्क को कुछ इशारा किया। उसने कोई कागज निरंजन के हाथ में दिया।

"मुझे बड़ा खेद है कि विश्वविद्यालय को यह कदम उठाना पड़ रहा है। मैं जानता हूं, आप बहुत ही योग्य अध्यापक हैं, और आप जैसा सुयोग्य व्यक्ति मिलना आसान नहीं है, लेकिन अध्यापकों को, मैं अनुभव से जानता हूं, विद्यार्थियों की दलबन्दी में, हिस्सा नहीं लेना चाहिये। आप भी जान जायेंगे, मुझे बहुत खेद है। आप तो अच्छे खाते-पीते घर के हैं। शायद कोई विशेष कष्ट न हो...।" कहते-कहते प्रिन्सिपल उठे और निरंजन से हाथ मिलाने के लिए उद्यत हुए। वे निरंजन को कमरे से बाहर छोड़ने आये।

जिस नौकरी पर, वे पिछले दिनों निर्भर होने लगे थे, जिसके कारण समाज में उनकी सम्माननीय स्थिति बन रही थी, अब वह नौकरी उनके हाथ में न थी। उनको इस्तीफा देने के लिए अगर बाध्य किया जाता, तब भी शायद उनका अनुभव और उनकी प्रतिक्रियाएं इस तरह की न होतीं। उन्होंने इस घटना की कल्पना तो की थी, पर इस तरह और इतनी जल्दी यह होगा, इसका उन्होंने अनुमान तक न किया था।

शुरू-शुरू में उनके कुछ भी विचार रहे हों, नौकरी को लाचारी ही समझा हो, अपने सामाजिक कार्य में बाधा ही माना हो, पर हाल के कुछ दिनों में, जैसे-जैसे उनको असलियत समझ में आती जाती थी, वे नौकरी को न छोड़ना चाहते थे। वे कुछ दूसरों के अनुभवों पर, कुछ निजी अनुभ

पर, इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि सामाजिक दायित्व और पारिवारिक दायित्व को ही प्रधानता देना बुद्धिमत्ता है, और पारिवारिक दायित्व और वैयक्तिक उन्नति में, वैयक्तिक उन्नति को ही महत्ता देना लौकिक ज्ञान था। इस तरह वे कुछ भटक-भटकाकर, उसी अनुभव विन्दु पर आ रहे थे, जिस पर बिना भटके, बिना व्यावहारिक अनुभव के ही, उनके मित्र प्रसाद पहुंच चुके थे। यह प्रतिक्रियावादी चिंतन ही था, पर वास्तविक चिन्तन था।

और जब उनके विचार कुछ कुछ इस तरह के होते जा रहे थे उन पर यह विपत्ति आ पड़ी। वे अभी प्रोबेशन पर ही थे। विश्वविद्यालय को बिना बहुत से कारण दिये, उनको बर्खास्त न करने का अधिकार था। वे कोई कानूनी कार्यवाही भी न कर सकते थे। विश्वविद्यालय से निकाल दिये जाने पर, शायद ही कोई और विश्वविद्यालय हो, जो उनकी सेवा लेता। इतना पढ़ा-लिखा, शिक्षा पर इतना खर्च किया, इतनी डिग्रियां पायीं, क्या वे सब बेकार जायेंगी, क्या मुझे आजीविका का क्षेत्र बदलना होगा? क्या करूं? क्या कर सकता हू?

नौकरी आसानी से नहीं मिलती, भाग्य की बात थी कि विश्वविद्यालय के उपकुलपति उनकी जाति के थे। सिनेट वगैरह में भी उनका ही बहुमत था। अब कौन नौकरी देगा? मैं उनके विश्वास का भी पात्र न बन सका। क्या यह प्रांत छोड़कर चला जाऊं? कहां जाऊं? इतने प्रभाव के बावजूद, मैं यहां अध्यापक न रह सका, नई जगह क्या बनूंगा? फिर परिवार का बोझ कौन उठायेगा?

जब से वे गांव से वापस आये थे, उनकी आर्थिक समस्या और भी विकट हो गई थी। बहन की मौत तो हुई, मां-बाप से बातचीत तक न हो सकी। लेकिन बन्धु-बांधवों से वे जान गये थे कि परिवार पर काफी कर्ज था, और परिवार में बड़े होने के नाते उसको चुकाने की जिम्मेवारी भी उन पर थी। क्या किया जाय?

कोई व्यापार? पूंजी नहीं, न कोई अनुभव न अभिरुचि ही। क्या करेंगे? पार्वती? पार्वती से विवाह के लिए धन-सम्पत्ति की भले ही आवश्यकता न हो, कम से कम आय का कोई स्थिर स्रोत तो हो। नहीं, नहीं, जिन्दगी ने

एक करवट ली है, एक ऐसी करवट ली जो जाने कहां मुझे ले जायेगी। निरंजन बड़े चिन्तित थे।

ऐसा कोई मित्र नहीं, जिससे कुछ कह-सुनकर अपनी चिन्ता कम करते, या अपने दिल को सहलाते। इतने दिन हो गये थे पर कोई भी तो मित्र ऐसा न बना। इतने मिलनसार और कोई भी मित्र नहीं, यह भी क्या विडम्बना है।

वे पार्वती के पास जाना चाहते थे, लेकिन न मालूम वह कहां थी? प्रसाद से कहूंगा तो मन ही मन वे हंसेंगे। जब उपकुलपति ने आखिरी निर्णय ले लिया है, और जब प्रिन्सिपल ने उनका निर्णय मुझे दे भी दिया है तो वे क्या कर सकते हैं? मैं उनसे सहायता मांगू भी तो कैसे मांगू?

वे धीमे-धीमे अपने कमरे की ओर गये, अगर विश्वविद्यालय बन्द न हुआ होता, और सब जगह पुलिस न हुई होती, तो शायद विद्यार्थी उनकी पुनः नियुक्ति के लिए मांग करते, और हड़ताल और जोर-शोर से चलते। अब उनके पीछे एक विद्यार्थी भी न था। उनको ख्याल आया कि इन बातों का फैसला अदालत में तो हो ही नहीं सकता। विद्यार्थी ही कर सकते हैं। क्यों न विद्यार्थियों से कहा जाय? वे ही आंदोलन शुरू करें, मैं फिर वापस आ जाऊंगा। लेकिन विद्यार्थी हैं कहां, फिर भी मिला तो जाय किसी न किसी से? यह विचार ज्यों ही उनके मन में कौंधा, उनको कुछ सान्त्वना हुई।

वे विद्यालय के फाटक से बाहर आये कि शास्त्री उनको अन्दर जाते हुए दिखाई दिये। वे निरंजन को देखकर रुके। नमस्कार किया।

"प्रिन्सिपल साहब के पास जा रहे हैं?" निरंजन ने पूछा।

"जी हां।"

"बधाई है, अब आप मेरी जगह काम करेंगे।"

"हैं!" शास्त्री ने आश्चर्य का अभिनय किया।

"खुशामद और चुगलखोरी बेकार नहीं जाती। लेकिन वह बहुत दिन काम भी नहीं आती है।"

प्रोफेसर साहब, आप मुझे गलत समझ रहे हैं, मैंने अगर किसी को आपके बारे में कहा है तो अच्छा ही कहा है। आपको किसी ने मेरे खिलाफ

गलत कान भरे हैं। मैं रजिस्ट्रार साहब के साथ टहलने अवश्य जाता हूं, पर किसी की चुगली नहीं करता।"

"अच्छा भाई—आई एम सॉरी।"

"कोई बात नहीं, मैं आपसे मिलना चाहता हूं, मैं नहीं चाहता कि आपके दिल मे गलतफहमी बनी रहे। कल सवेरे आऊंगा।"

"आइये, आइये," निरंजन सोचने लगे। अगर और कोई होता तो उनके इस तरह के नग्न सकेत को लेकर झगडा शुरू कर देता। पर शास्त्री चिकने घड़े की तरह सब बातें झाड़-झूडकर, खुशी-खुशी प्रिन्सिपल साहब के यहा गये। वे उन्ही की जाति के थे। हो सकता है कि दोनों की तिकड़म रही हो। तिकडम मे अगर कामयाब हुए है, तो मेरी ही गलती से। उनको बुरा-भला कहने से क्या फायदा?

निरंजन के मन मे इस तरह के विचार आ रहे थे, उनसे बचने के लिए क्या किया जाये, वह यह सोच न पाते थे। वे सिगरेट पर सिगरेट फूक रहे थे, सिगरेट के साथ, उनकी चिन्ता बढती जाती थी। परेशानी, बेचैनी, सब बढती जाती थी।

॥ सत्ताईस ॥

टहलकर वापस जाते-जाते काफी सवेरे, शास्त्री निरंजन के कमरे मे गये। निरंजन तो शायद रात भर नही सो पाये थे। न शराब ने सोने में मदद की, न सिगरेट ने ही। आखें लाल थी। नीद के लिए तरस रही थी।

शास्त्री इस तरह लपककर कमरे मे आये, जैसे रात भर निरंजन से मिलने के लिए पल-पल गिन-गिनकर काटा हो। इससे पहले कि निरंजन उनको बैठने के लिए निमन्त्रित करते, वे स्वय कुर्सी पर से खुद गन्दे कपडे हटाकर बैठ गये। उनके व्यवहार में एक विचित्र आत्मीयता दिखाई दे

रही थी।

"ओ, आप आ गये—बैठिये।"

"मैं रात भर सो न सका। मैं नहीं चाहता कि किसी के मन में कोई गलतफहमी बनी रहे। मैं सच कहता हूं कि मैंने आपके बारे में कभी किसी से बुरा नहीं कहा है।"

"यह तो आप पहले भी कह चुके हैं।"

"आप इस ख्याल में न रहिये, कि आपको मेरी वजह से…"

"नहीं, नहीं, आपकी वजह से नहीं, मैं जानता हूं, विश्वविद्यालय के अधिकारी आपके कहे पर चलते तो यह नौबत ही नहीं आती आज विश्व-विद्यालय में।" निरंजन की बात में व्यंग्य था, कुछ-कुछ कड़वापन भी, जिसे शास्त्री समझकर भी यूं मुस्करा रहे थे जैसे कुछ समझा ही न हो।

"खैर, मेरा दिल साफ है।"

"वह कभी मैला हो ही नहीं सकता।"

"आप फिजूल मुझ पर नाराज हैं, और मैं बहुत झिझक और हिच-किचाहट के बाद, आपसे एक बात कहने आया हूं। आपकी निजी बात है, शायद मुझे नाक नहीं घुसेड़नी चाहिये। पर देखते-देखते, मैं नहीं चाहता कि आप जैसे आदमी पर बुरी बीते। हां, यह बात दूसरी है, अगर आप यह सब जानबूझकर कर रहे हों। फिर भी जान लेना अच्छा है।"

"हां, भूमिका जरा लम्बी बन रही है।"

"जिस दिन मैंने आपको बस स्टैण्ड पर देखा था, उनका आना-जाना जब यहां अधिक हो गया था, तभी मैं कह देना चाहता था, पर मौका ही न मिला। और अब वक्त आ गया है कि मुझे बिना कहे नहीं रहना चाहिये।"

"हूं।"

"ये बातें औरतें नहीं बताती हैं, मर्द भी शायद नहीं बताते हैं, कहा जाता है कि सौ झूठ बोलकर एक शादी करवाओ, और शादी को लेकर जितने मन मुटाव होते हैं, किसी और बात पर नहीं होते। हमारा समाज जो भी है, जैसा भी है, हमारा है। और हमारे समाज में ये सब बातें बुरी नजर से देखी जाती हैं।"

"हूं।"

"मैं नहीं चाहता कि जिन्दगी में एक गलती करके जिन्दगी भर उसे भुगतते रहें।"

"यहां तो, लगता है, जब से मैंने जिन्दगी शुरू की है, तब से गलती ही गलती कर रहा हूं।"

"यहां तक आने की हिम्मत तो मैं कर बैठा पर कहने की बात मुंह तक आती है, फिर मैं झिझक जाता हूं। आप अच्छे घराने के हैं, पैसा हो या न हो, मां-बाप ठीक हों, तो किसी के सम्मान में कोई बट्टा नहीं आता है। कई ऐसे हैं, जिनको आजीवन माता-पिता की गलती के लिए सिर झुकाये-झुकाये, शर्म में रहना पड़ता है।"

"हां," निरंजन सब समझ रहे थे कि बात घूम-फिरकर कहां आ रही थी, वे यह भी जानते थे कि जो बातें बताने आये थे, वह बिना उनकी प्रेरणा के भी बताकर रहेंगे। वे सुनते जाते थे। पिछले कुछ दिनों से उनके सिर पर इतने मूसल गिर रहे थे कि एक और मूसल गिरने से कोई खास फर्क नहीं पड़ता था।

"आप आदर्शवादी हैं। इंग्लैंड में पढ़े-लिखे हैं। हो सकता है कि आप सोचते हों, कि जो बात पश्चिम में गलत नहीं समझी जाती है, वह यहां क्यों समझी जाय। पर हर समाज की अपनी-अपनी मान्यताएं, मूल्य होते हैं, और उनके स्वाभाविक परिवर्तन की अपनी-अपनी एक विशेष प्रक्रिया होती है। हम बदले हैं, बदलेंगे, पर एक विशेष प्रक्रिया के अनुसार ही। और ये प्रतिमान किसी भी देखादेखी नहीं बदलते, एक-दो व्यक्ति इसे बदल भी नहीं पाते हैं। जो बदलने की कोशिश करते हैं, उनके विचार आजीवन बने रहेंगे, यह भी नहीं कहा जा सकता। जो कोई बात हम परम्परा के विरुद्ध करते हैं, शुरू-शुरू के उत्साह में सब ठीक लगता है, पर बाद में जब उत्साह ठंडा पड़ने लगता है, तो पछतावा होने लगता है। उत्साह अपने आप में स्थिर मूल्य नहीं है। खैर, यह सब मैं क्यों कह रहा हूं, आप सब जानते ही हैं।"

"आप शायद पार्वती के बारे में कहने की कोशिश कर रहे हैं।" निरंजन ने ही इस भय से कहा कि कहीं वार्तालाप एकतरफा न बन जाये।

"जी, मैं उसी गांव का हूं जिस गांव की वह है। हम भी उसी परिवार पर निर्भर थे जिस पर वह है, मैं सब कुछ जानता हूं। आप शायद इस ख्याल में हैं कि वह प्रसाद जी की बहन है!"

"हां।"

"हां, बहन तो वह अवश्य है, क्योंकि उन दोनों के पिता एक हैं।"

"तो…"

"पर उनकी माताएं अलग हैं, और पार्वती की मां प्रसाद के पिता की रखैल थी।"

"हूं!" निरंजन ने अट्टहास किया, अट्टहास क्या था—पीड़ा और क्षोभ का विस्फोट था। उस अट्टहास से शायद वे यह घोषित करना चाहते थे, 'आओ और मुसीबतें, यह भी सह लूंगा।'

"वह श्रीधर की ही बहन है, पर श्रीधर के पिता कोई और हैं।"

"हूं।"

"जमींदारी गांव में एक जाति है, जो दासी जाति कहलायी जाती है, उनमें इस तरह के सम्बन्ध साधारण नहीं होते। पार्वती की मां उस जाति की थीं।

"अच्छा।"

"भले ही उनकी सम्बन्धी वेश्यावृत्ति करती हों, पर वे वेश्या भी न थीं, पर इस सम्बन्ध के बाद, हमारे समाज में, वे एक निम्न, नीची स्त्री बन गईं। इतनी लज्जित रहीं कि उन्होंने अपने बच्चों के भविष्य के लिए आत्महत्या भी कर ली। लेकिन हमारा समाज ही ऐसा है कि वे मरकर भी, अपने बच्चों पर लगे धब्बे को, जिसके लिए वे स्वयं जिम्मेवार थीं, न हटा सकीं। उनका बलिदान बेकार गया।"

"बलिदान सम्भवतः बेकार जाता है।"

"इसके बाद और भी कई घटनाएं हुईं जो प्रायः अच्छे घरों की लड़कियों के जीवन में नहीं गुजरतीं।"

"यह हुआ कैसे?"

पार्वती की मां स्कूल में टीचर थीं, जो हमारे गांव में, जमींदार के दान पर चलता था। वे वहां अपना पेट पालने आयी थीं। पति कहीं क्लर्क

थे। कभी-कभार ही गाव आ पाते थे। उनका लडका श्रीधर उनके घर रहा करता था। तब वह छोटा था।

"हूं।"

"वे देखने में बहुत खूबसूरत थी। जवानी में थी। पार्वती भी अपनी मा पर ही है। अकेली थीं। और अकेली स्त्रियां कहीं भी असहाय होती हैं। हमारे गाव में, जमीदार के स्कूल मे तो वे अच्छा शिकार सी थी।

"हूं।"

"वही हुआ जो हो जाता है। पार्वती पैदा हुई। पति को भी पता लगा कि उसकी पत्नी किसी रईस की वासना का शिकार बन गई थी। उन्होंने खुदकुशी कर ली—वे उसी कीचड में जा फंसे थे, जिससे निकलने के लिए शादी कर-कराके, सवर्णों की तरह जीने की कोशिश की थी।

"अरे, अरे···"

"गरीब ही सही, लेकिन आत्मसम्मान वाला व्यक्ति था, पत्नी को खाने-खिलाने की बात सोचते तो उनको डर था कि जमींदार साहब जो उनकी पत्नी छीन सकते थे, उनको इस दुनिया से भी बेवक्त रफू कर सकते थे। यही अक्लमन्दी की बात थी। जीकर क्या करते? जिन्दगी शर्म में काटनी पड़ती। यही तो बात है।"

"हूं।"

"इसलिए मैं आपको आगाह करना चाहता हू।"

"हू।"

"हो सकता है तभी पार्वती की मा ने आत्महत्या करने की सोची हो, पर बिना बाप के दो बच्चो की जिम्मेदारी उन पर थी।"

"हां।"

"जमीदार साहब ने दोनो को पढाया-लिखाया, आपको मालूम नहीं है कि श्रीधर, अगर उसको कालेज में पढ़ने दिया जाता, तो आज वह डाक्टर होता। उसने पूरे चार साल मेडिकल पढा है।"

"हूं।"

"लेकिन हुआ वही जो अक्सर ऐसे मामलो मे होता है पार्वती की मा की जवानी जब ढलाई पर आयी, तो जमीदार साहब किसी और स्त्री पर,

जो उस गांव में टीचरी करके जीवन निर्वाह करना चाहती थी, लट्टू हो गये।'

'हां, यह तो उन दिनों मामूली बात थी।'

"इतनी ही बात होती, तो पार्वती की मां यह सोचकर कि खैर, ऐसे ही पिंड छूटा, अपनी बची-खुची जिन्दगी बिता देती, लेकिन उनके भाग्य में यह न था।"

"हूं।"

"उन्हीं दिनों जमींदारी रद्द कर दी गई। जमींदार साहब ने पार्वती की मां को रुपया देना बन्द कर दिया। श्रीधर की पढ़ाई के लिए रुपया भेजना बन्द कर दिया। पार्वती को स्कॉलरशिप मिला हुआ था, इसलिए वह पढ़ती गई···"

"उनकी मां टीचर थी न ?"

"पर टीचर की, वह भी प्राइमरी स्कूल के टीचर की, उन दिनों क्या तनख्वाह थी और आज भी क्या है, कि अपने ही बूते पर लड़के को मेडिकल कालेज में पढ़वाये। कुछ दौड़धूप अवश्य की, खुद फाके करतीं, इधर-उधर से पैसा जुटातीं, फिर भी वे न खुद गुजारा कर पातीं, न बच्चों की देखभाल ही कर पातीं।

"हूं।"

"तब भी बात न उलझती यदि उनके बच्चे उनको ठीक तरह से देखते। वे इतने बड़े हो गये थे कि जान सकते थे कि मां की बदनामी उनके साथ थी, और उनको चैन से जीने न देगी। वे अपनी माता को न वह प्रेम दे पाये, न आदर ही, जो देना चाहिये था। फिर वह जिन्दा किसके लिए रहतीं ? विष खा लिया।"

"हूं, बाद में क्या हुआ ? यही न कि श्रीधर को कालेज से निकलना पड़ा।"

"जी, और वह बदला लेने के लिए उतारू हो गया। उसने अपने दोस्तों की, एक पार्टी बनाई, गांव में कई ऐसे परिवार थे, जो जमींदार की विलासिता के शिकार थे, वे उसके साथ हो गये। वे उनकी माल मिल्कियत पर हमला करते। उनको तंग करते। उनके रिश्तेदारों को सताते, अब

भी सता रहे हैं—जो व्यक्तिगत झगड़े के रूप में शुरू हुआ था, वह अब एक आन्दोलन सा हो गया है।

"लेकिन पार्वती तो जमींदार के यहां ही रहती है।"

"रहती थी, मगर उसका वस चलता तो न रहती, दासी की तरह थी, लड़की थी, रखैल से ही सही। कुछ लिहाज-किया जाता था, जब मैं इतना कहता हूं, तो आप समझ सकते हैं कि मेरा मतलव क्या है?"

"किन्तु वह तो उनके घर में घरवालों की तरह रहती है।"

"रहती थी। उसमें भी स्वार्थ था। आपने देखा होगा कि जमींदार साहब विना पार्वती को लिये कहीं नहीं जाते थे। वह इसलिए कि जब तक वह साथ है वह जानते थे कि न श्रीधर न उसके आदमी ही उन पर हमला करेंगे। उसने शायद किया भी नहीं..."

"हूं?"

"उसको महल में इसलिए रखा जाता था, ताकि श्रीधर महल पर हमला न करे। रईस किसी पर यूं ही नहीं मेहरवान होते हैं।"

"हूं, अब आपका भी यही निष्कर्ष है? तभी पार्वती को, जमींदार साहब लारी में अपने साथ ले जाते थे, ताकि लारी पर हमला न किया जाय।"

"जी हां, अब वे यहां आ गये हैं, और श्रीधर की पहुंच यहां तक नहीं हैं, इसलिए उसको गांव में ही छोड़ दिया गया। ये सब बातें ऐसी हैं कि कोई भी लड़की स्वयं नहीं कह सकती। इस विषय में पार्वती को दोष देना भी ठीक नहीं है। पर आपके लिए ये सब बातें जान लेना ठीक है। मुझे मालूम है कि आप मेरा विश्वास नहीं करेंगे मगर बाद में खुद जान जायेंगे कि मैंने हमेशा आपका हित चाहा है।"

निरंजन के सामने सारी बातें यकायक साफ होने लगी, वे छोटी-छोटी बातें जो अजीव-सी लगती आयी थी, क्यों अजीव थी, यह समझ में आने लगा था।

"मगर अब क्या किया जाय? पार्वती अगर यहां न रहती थी, तो क्यों न रहती थी, यह भी उनको पता लगा। शास्त्री पर विश्वास करना भी ठीक न था, शायद यह दिखाने के लिए कि वे कितने विश्वसनीय हैं, ये सब बातें

वता रहे हों। इनकी वदौलत नौकरी तो गई ही, अव प्यार, जिन्दगी, जाने क्या-क्या···? उनका सिर चकरा रहा था। पागल—से हो रहे थे।

और श्री शास्त्री, एक ढहते पेड़ को आग दिखा कर आराम से चले गये।

।। अट्ठाईस ।।

जव तक विपत्तियां आकस्मिक थीं, उनके वारे में ही सोचते रहते थे, जव वे सिर पर ही थीं, उन पर सोचना निरंजन ने व्यर्थ समझा। चिन्ता तो ऐसी है कि उतारे भी नहीं उतरती।

वे सीधे प्रसाद के पास पहुंचे। काफी देर हो गई थी। वे अवश्य उठ गये होंगे। निरंजन न नहा सके, न धो सके। दाढ़ी भी न वनाई। सूखे वाल विखरे-से थे। सूखे चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं, वेहाल थे।

शास्त्री का विश्वास करना मुश्किल। मधुर-भाषी। लेकिन इतने स्वार्थी कि उनका विश्वास करना मूर्खता सी थी। उल्लू सीधा होता हो, तो कुछ भी करने के लिए तैयार थे। वातें ऐसी थीं, कि उनका उनके रहने पर कोई कार्यवाही करना नासमझी हो सकती थी।

वे पार्वती को जो अव तक समझते आये थे, वह वह न थी, यह निरंजन के लिए धक्का ही था, और वे जिन परिस्थितियों में से गुजर रहे थे उनमें आंखें मूंदकर प्रेम के पथ पर चलना अक्लमन्दी न थी। प्रेम के लिए लोग वरवाद हो जाते हैं। क्या उनका प्रेम वैसा ही था? अगर था भी तो क्या वैसा ही रहेगा, जव कि इतना कुछ मालूम हो गया था।

इसमें पार्वती का कोई दोष नहीं है, दोष यही है कि उसने ये सव वातें खुल कर न वताई थीं, यह ठीक है कि वताने का मौका ही न मिला था, पर वातें इतनी मुख्य थीं कि विना मौके के भी उनको वताना चाहिये था।

उनका दोष नहीं है, पर क्या मुझे कुत्ते ने काटा है, कि प्रेम के नाम पर आजीवन अपमान झेलता रहूं ?

'वह उस दिन आयी, बिना बुलाये आयी, मना करने पर भी, रात भर मेरे साथ रही, क्या अच्छे घर की अच्छी औरतें ऐसा करती हैं, हो सकता है कि मुझे फंसाने के लिए ही यह सब कर रही हो। उसका स्वार्थ इसी में है, क्या मेरा स्वार्थ इसमें है ?

'सोचती रही होगी, कैसे विवाह होगा ? और विवाह नहीं होगा तब क्या-क्या करना होगा, इसीलिए तो अपने भाई को भी बराबर इसकी सूचना देती रही, और वह अपनी जान जोखिम में डाल कर मुझे देखने आया, निश्चय ही कोई चाल थी।

'मैंने शादी का वचन ही कब दिया था ? रात रही, कुल्टा की लड़की है, जानि की भी दासी है, फिर मैं पहला तो न था, जमींदार के घरों में रहने वाली दासी, उम्र आने पर कितनी पवित्र रह सकती है, यह सब जानते हैं।'

निरंजन के मन में तरह-तरह की बातें उठ रही थी, पर विचारों का बहाव पार्वती के विरुद्ध था। कभी यह सोचते, कभी वह। अपने को कभी नैतिक रूप से दोषी पाते, तो कभी निर्दोष। लेकिन बात ऐसी थी कि वे चाहते थे कि जल्द से जल्द उसका तय हो जाना ही अच्छा था, 'जब आम ही न हो, तब विवाह के बारे में सोचना गले में फंदा डालना है। क्या उसकी अपनी आय है ? जिस जमींदार ने उसके भाई का खर्च उठाने से इनकार कर दिया था, वह भला इसे क्या देगा ? जो भी हो, लड़की ही सही, पर है तो नौकरानी। हो सकता है, थोड़ा बहुत लुके-छुपे दे-दा दिया हो, या पढ़ा-लिखा कर यह भी सोच लिया हो कि उसकी जिम्मेवारी खतम हो गई है। माना कि वह सम्पत्तिवाली है, पर क्या इसलिए ही ? नहीं, नहीं।

'मैं अब बेकार हूं, वह स्कूल चला रही है, अच्छा काम है। क्यों न मैं उसके साथ काम करूं ? काम तो रहेगा, पर देखें कि क्या-क्या होता है ? उस गांव में कैसे वह स्कूल चलायेगी जहां उसकी मां बदनाम थी, जहां वह खुद भी शायद बदनाम हो। कौन भेजेगा अपने बच्चे, फिर उस छोटे से गांव

में लड़कियां हैं भी कितनी ? और लड़कियों के स्कूल में मेरा क्या काम ?

'मैं समाज में सुधार चाहता हूं, चाहता था कि यह जल्द से जल्द हो। लेकिन इस हालत में नहीं हूं कि एक अप्रकट सुधार के लिए अपने को बलि कर दूं। अब जिम्मेदारियां हैं सिर पर। सुधार के नाम पर मैं अपनी जिम्मेदारियों से नहीं भाग सकता। फिर मुझ अकेले से हो ही क्या सकता है? फिर यह सुधार क्या है ?'

कई बातें उनके मन में कुलबुला रही थीं और कदम तेजी से प्रसाद के बंगले की ओर बढ़ते जाते थे, ज्यों-ज्यों बढ़ते जाते थे त्यों-त्यों यह भी सोचते जाते थे—'मैं उनके पास क्यों जा रहा हूं ? मैंने तो करीब-करीब निर्णय सा कर लिया है, लेकिन इस निर्णय का परिणाम ? पार्वती का भाई श्रीधर खूंखार आदमी है, जैसे वह जमींदार साहब से बदला ले रहा है, वैसे मुझसे भी लेगा। उस हालत में मेरी तरफ भी कुछ मित्र हों, तो अच्छा है। प्रसाद कुछ भी हो, अच्छा मित्र है—संकट में काम आने वाला। मौसमी यार नहीं,···इस समस्या का यह भी एक पहलू है।'

निरंजन जब बंगले में पहुंचे तो प्रसाद बराण्डे में घूम रहे थे। सिगरेट सुलगा रखी थी, उनके पीछे उनका कुत्ता था। बराण्डे में दो-तीन कुर्सियां पड़ी थीं। उन पर अखबार पड़े थे। वे घूम-घामकर ही अखबार पढ़ते थे, इस तरह घूमना हो जाता था, और अखबार पढ़ना भी।

निरंजन को देखते ही वे तपाक से बोले, "आओ भाई, अब फ़ुरसत ही फ़ुरसत है, कहो, कोई बात नहीं।"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

'दोस्त कम हो, तो यह दुनिया बहुत छोटी है।"

"फिर भी ?"

"शास्त्री बता गया था।"

"अच्छा" निरंजन को कोई अचरज न हुआ।

एक जमाना था, नाई और पुरोहित घर-घर की खबरें दिया करते थे, गिलेट ने नाइयों का यह काम छीन लिया, और आधुनिकता ने पुरोहितों का। लेकिन शास्त्री, आज भी अपना काम करता ही रहता है।"

"हूं।"

"हम नौकरों मे इस तरह व्यवहार नही करते जैसे वे नौकर ही हो। हम सब को अपने घर का ही मानते हैं। इसलिए कुछ के मन मे भ्रम हो जाता है।" प्रसाद यह कह रहे थे क्योंकि वे अनुमान कर सकते थे कि निरंजन क्यों आये थे। निरजन भी उनका संकेत समझ सकते थे।

"मुझे ही पहले बताना चाहिये था, मैं सुन-सुना तो रहा था पर यह नही जानता था कि प्रेम-व्रेम भी शुरू हो गया है। दास-दासियों का उपयोग होता है, या उपभोग होता है, पर उनके साथ प्रेम नही किया जाता। तुम समझ सकते हो कि मैं क्या समझ रहा था।"

"तो पार्वती तुम्हारे घर मे···" निरंजन कहते-कहते हिचकिचाये।

"कहा होगा कि मैं उसका भाई हू, हा भाई हू, मगर ऐसे ही मैं कई और का भी भाई हूं। पुराने जमीदारी घरो में यह सब होना था, समझे न?"

"हूं।"

"वह शायद हमारे घर मे रहती भी न, यदि परिस्थितिया प्रतिकूल न हो जाती, अगर उसका भाई हमारे खून का प्यासा न हो जाता। लेकिन इससे उसकी स्थिति तो नही बदल जाती? तुम्हे उसने कुछ बताया नही?"

"नही तो···"

"फिर ऐसी बातें बतायी भी कैसे जा सकती हैं?"

"हू।"

"अगर मैं तुम्हारी जगह होता, तो यह सब भूल जाता, हमारे देश मे यह सब होता आया है, आईन्दा शायद न हो। कम से कम हमें यह आशा तो करनी ही चाहिये। तुम उसको भूल जाओ, लडकी अच्छी है, पढी-लिखी है, सब ठीक है, लेकिन शादी दो की होती है, सम्बन्ध दो परिवारों के होते हैं, और सारा समाज इसमे जुडा हुआ होता है। फिर बच्चो की बात भी है, तुम्हारी एक जाति है, उसकी कोई जाति नही है, बच्चों की क्या जाति होगी? और हमारा समाज इस प्रकार का नही है, कि जातियों का अस्तित्व ही नकार दो और जब तक ये है उनको मानने मे ही अक्लमन्दी है। मैं जाति के पक्ष मे नही हू, पर वास्तविकता यह है, कि हम

मानव सम्बन्धों में जाति को जितनी प्रमुखता देते हैं, उतनी और किसी बात को नहीं। मुझे मालूम है, तुम भावुक हो, और मेरी बातों का बुरा भी मान सकते हो।"

निरंजन को लग रहा था कि उस क्षण वे उनके मन की बात कह रहे थे। वे निर्णय तो पहले ही ले चुके थे अब वह निर्णय पक्का हो रहा था।

"प्रेम में भी तुम उसी तरह फंसे जिस तरह कि यहां के सामाजिक या राजनीतिक आन्दोलन में?" दोनों ही गलतियां थीं, लेकिन ऐसी गलतियां जिन्होंने तुम्हें वाकई बचा लिया। ठोकर तो लगी, पर चारों खानें चित न गिरे। भूल जाओ, यह सब होता है। तुम इंग्लैंड हो आये हो। वहां तो इस तरह की घटनाएं रोजमर्रा होती हैं।"

"पार्वती है यहां।"

"नहीं तो, वह गांव में है, वह हमारे मकान में एक स्कूल चलाना चाहती थी, हमने कहा कि हमें एतराज नहीं होगा। पर लड़कियों के स्कूल के लिए उस गांव में उतनी बड़ी बिल्डिंग की क्या जरूरत है। अच्छा हुआ हमने न दी। उस आहाते में और भी छोटी-छोटी बिल्डिंग हैं, एक में जब जमींदारी थी, हमारा दफ्तर था, वह खाली पड़ी थी, चमगादड़ बसते थे, वह दे दी, किंतु वह अब तक स्कूल शुरू नहीं कर पा रही है।"

"क्यों?"

"अरे भाई, वह गांव अजीब है, बिल्ली क्या गई कि सब चूहे बिल्ली बने हुए हैं। लोगों को बताया गया, उसके भाई ने ही उकसाया होगा कि स्कूल खोल कर हम अपने वंश का नाम स्थायी करना चाहते थे। और वे हमारे वंश के खिलाफ हैं। अक्ल भी देखो लोगों की। चला दिया आन्दोलन कि वहां स्कूल नहीं चलेगा। उन लोगों ने कहा कि वहां मवेशियों के लिए दवाखाना खोला जाय, हमसे पूछा गया, और हमने साफ मना कर दिया। गांव के बाहर थोड़ी जमीन थी, हमने कहा, अगर चाहो, तो वह दवाखाना यहां खोला जा सकता है। लेकिन वे न माने।"

"अच्छा?"

"और तुम ऐसे लोगों के लिए जिन्दगी दे देना चाहते हो। बात वहीं

खतम न हुई, उन लोगों ने हमारे मकान को लूटने का प्रयत्न किया। वहां अब बहुत चीजें नहीं रह गई है। फिर जो कुछ था, उठाकर ले गये। बिल्डिंग को नुकसान पहुंचाया। खैर, नतीजा यह हुआ कि न वहां स्कूल है, न दवाखाना ही, पर पुलिस की चौकी है, जिसकी वजह से हमारे घर की रखवाली भी हो जाती है, और थोडा-बहुत किराया भी आ जाता है।"

"और पार्वती?"

"अभी तो, वह उसी घर में है, और भी दो-चार नौकर हैं। अरे, हम यह नहीं जानपाते थे कि तुम इतने मूर्ख हो, कि यह न जान सकोगे कि वह नौकरानी है। कभी हमारे घर की स्त्रियां यूं बाहर आती हैं? खैर, भूल जाओ, किस्सा खत्म।"

"हां, अब भूलना ही होगा।"

"सुनता हूं कि तुम्हें नौकरी से हटा दिया गया है।"

"हां।"

"क्या करोगे? क्या करने का इरादा है?"

"क्या करूंगा, यही तो समझ में नहीं आ रहा है।"

"अब समझ गये न? क्रांति करवाई नहीं जाती, यह काफी है कि क्रान्ति हो, और हम उसके विरुद्ध न हों, उसके साथ हो जायें। पर क्रान्ति लाने का भगीरथ प्रयत्न हर किसी को रास नहीं आता। उसके लिये और होते हैं, हम मध्यम वर्ग वाले नहीं। न रईस ही हमारा विश्वास करते हैं, न नीचे के गरीब ही। क्यों हम उन लोगों के लिए कुर्बान हो जायें, जो हमारा विश्वास तक नहीं करते। वक्त आयेगा जब हम भी समाज और देश के काम आयेंगे। मार्क्स का सिद्धान्त ही ऐसा है कि ये सब बातें होकर रहेंगी। फिर हमारे उनके लिए कुछ करने-कराने की क्या जरूरत है? अपना घरबार देखो, अगर हमने इसको सभाल लिया तो समाज के एक कोने में तो वह कर दिखाया, जो हम करना चाहते थे। नहीं तो तुम्हारी शक्ति इस तरह बिखरेगी कि इस बिखरे समाज का सुधरना तो अलग, तुम टुकड़े-टुकड़े हो जाओगे, और समाज बदस्तूर चलता रहेगा जैसे तुम्हारा होना और न होना उसके लिए बराबर हो।

"मगर···"

"तुम नौकरी की फिक्र न करो, अच्छी नौकरी थी, तुमने हाथ से जाने दी। और नौकरी पाना बहुत मुश्किल है आजकल।"

"लेकिन कुछ तो करना ही होगा।"

प्रसाद ने सिगरेट की राख छिड़की और अंगुली चटकाते हुए कहा, "कोई फिक्र न करो, तुमको यही नौकरी फिर मिलेगी, किसी से न कहना, अभी तो विश्वविद्यालय बन्द है, हमेशा के लिए तो बन्द रह नहीं सकता, कभी खुलेगा ही। जब विद्यार्थियों की और मांग है, एक तुम्हारी भी हो जायेगी। मेरे पास कुछ विद्यार्थी आते ही रहते हैं, मैं उनको समझा दूंगा, इस बीच जरा तुम चुप रहो।"

निरंजन ने लम्बी सांस ली। राहत मिली।

"इतनी सी बात पर यह शक्ल क्या बना रखी है? बिल्कुल मुहर्रमी चेहरा। आओ, आज हमारे साथ खाना रहा। हमारा गेस्ट रूम खाली पड़ा है। नहाओ, तैयार हो जाओ।"

जो होना हो सो हो, पर उस समय निरंजन के मन से, तन से एक पहाड़ हट-सा गया था।

॥ उनतीस ॥

तार आया था। घर में पिता बीमार थे। निरंजन घबराये। कहीं बहन की बीमारी की सूचना की तरह कोई और दुखद सूचना तो न थी? वे तुरत घर गये।

निरंजन के पिता ने उनको वह सब देने का प्रयत्न किया था जिससे वे स्वयं वंचित रहे थे—शिक्षा, आर्थिक सुरक्षा आदि, उनको वे उस रास्ते पर भी न चलते देना चाहते थे, जिस पर चल कर उनको स्वयं मुंह की खानी पड़ी थी—समाज सेवा। वे भुगत चुके थे, और यह न चाहते थे कि

उनका लडका भी भुगते। और निरंजन यह जानते थे।

वे घर के बड़े थे। उन पर ही सारी जिम्मेदारी आती थी। पश्चिम मे यह भले ही न होता हो पर हर समाज की अपनी-अपनी संस्कृति होती है, रीति-रिवाज होते हैं। मूल्यो के बने-बनाये ढाचे होते हैं। भारतीय समाज के यही मूल्य थे। वे तुरत नही बदले जा सकते थे। कोई भी मूल्य तुरत नहीं बदले जा सकते। वे काफी बदले थे, पर जब तक वे हैं, उनका पालन करना ही होगा।

अगर पिता जी भी···भगवान न करें, कि यह हो, तो मैं क्या करूंगा? नौकरी भी नही, पढाई-लिखाई इस तरह हुई कि ऋतुओ का भी कोई व्यावहारिक ज्ञान नही, खेती तो जानता ही नही हू। क्या किया जाय? पिताजी क्या जानते थे? उन्होने तो और भी कठिन परिस्थितियो मे जीवन प्रारम्भ किया था। उनके पिता ने सब कुछ देश को दे दिया था। पिताजी भी शायद देश के काम आ जाते यदि वे इस बीच परिवार वाले न हो जाते। उनके पिता ने उनको ठीक पढाया-लिखाया भी न था, इस योग्य भी न बनाया था कि वे स्वय अपनी आजीविका कमा सकें। फिर भी वे अपने परिश्रम से कुछ बने, थोडी बहुत सम्पत्ति भी जुटा सके। क्या मैं वह नही कर सकता?

दो पीढियो से मेरे परिवार के लोग देश के लिए काम करते आये हैं। क्या पाया उन्होंने सिवाय कठिनाइयों के? क्या उनकी सेवा से देश उतना सुधरा जितना कि वे सुधारना चाहते थे? कभी नही सुधरता। देशभक्ति, समाज सेवा अब शायद उतने उदात्त आदर्श नहीं हैं। राष्ट्रीयता एक आवेश मात्र रह गया है। क्यो कोई देश के लिए कुर्बान हो? मूल्य, विश्वास, सब स्वत: बदल रहे हैं। औद्योगिक सभ्यता इस तरह जड़ पकडती जा रही है कि पुराने विश्वास, आस्थाए, विचार, सब धराशायी हो रहे हैं। मानवता का इतिहास एक लम्बे रास्ते से ऐसे मोड पर आ गया है कि वैसी विषमताए और अत्याचार सभ्य देशो मे नही है, जो क्रान्ति के कारण होते है। फिर क्रान्ति के लिए मर मिटने की क्या आवश्यकता है?

आजकल की उपभोक्ता सभ्यता मे, उपभोग्य वस्तुओ के लिए जनसाधारण का इतना मोह है कि हर आदमी क्षणभोगी होता जा रहा

है। क्षणभोगियों के लिए त्याग और वलिदान कोई महत्ता नहीं रखता। क्षणभोगियों के समाज में हर किसी को अवसरवादी वनना पड़ जाता है, मैं तटस्थ रहने को तैयार हूं, निष्क्रिय रहने को तैयार हूं, पर अवसरवादी वनना मुझे गवारा नहीं, भले ही मैं लौकिक दृष्टि से वुड़वुक समझा जाऊं? कौन जाने?

वे पिताजी के पास जा रहे थे। कभी उनकी जिन्दगी उनके सामने आती तो कभी अपनी ही। एक ही साथ कितनी ही दुविधाओं में थे— लेकिन ऐसा लग रहा था जैसे कोहरा हट रहा हो, और आगे का रास्ता कुछ-कुछ साफ हो रहा हो।

कभी पिता जी को हिन्दी का शौक चढ़ा था, हिन्दी का कार्य भी राष्ट्रीयता का कार्य था। गांव से वाहर, अपने खर्च पर स्कूल चलाया था। खुद हिन्दी सीखी। दूसरों को सिखवाई। कितना ही कार्य किया। लेकिन जव लोग रोजी-रोटी के चक्कर में पड़ गये, तो उन्होंने उनको पूछा भी न, जिन्होंने उनको रोजी-रोटी कमाने लायक वनाया था। वे उपेक्षित रहे। समाज में वे इतने अवहेलित-से रहे, जैसे हिन्दी पण्डित होना कोई नितांत साधारण वात हो। उनके अनुभव से अगर कुछ सीखा जा सकता है तो यही कि सेवा के नाम पर पाठशाला भी न खोलो।

खुद हिन्दी सीखी थी। उपेक्षित रहे थे। इसलिए मुझे अंग्रेजी सिखाई, अव जिस अंग्रेजी को लेकर, विश्वविद्यालयों में ही हड़तालें हो रही है, उसे गांवों में कौन सीखेगा? नहीं, शायद मैं यह भी नहीं कर सकता।

भारत आजाद हुआ, पर वे ही लोग ऊपर आये, जो उच्च जातियों के थे, जो अंग्रेजीदां थे। उनको न पूछा गया, जिन्होंने अपने जीवन का वहु-मूल्य समय गांधी जी के आन्दोलन में भाग देकर जेलों में काटा था, या गांव के एकान्त में, एकनिष्ठ हो, जनकल्याण के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया था। अव क्या परिस्थिति वदल गई है? कुछ वदली अवश्य है, पर शायद उतनी नहीं। उस हालत में मैं वह भी नहीं कर सकता जो पिताजी ने किया था।

लोग सेवा करें, स्वीकारी भी न जाये, तो क्या फायदा? लोग वड़े नेता हो जाते हैं, अगर उनकी नेतागीरी को मान्यता न दी जाय, जगह-

जगह उनके स्वागत मे जमघट न लगें, उनको आदर-सम्मान न मिले तो ये नेता भी सेवा-वृत्ति छोड़कर अपने घर बैठें। मैं वैसा नेता भी नहीं बन सकता ? ···फिर मैं क्यों ऐसा नेता बनूं ? मेरे विचार पक्के नहीं हैं,··· और कितनी ही जिम्मेवारियां मुझ पर हैं।

यहां तो वे ही राजनीति मे भाग ले सकते हैं, जिनके घर काफी दौलत है। जो शौकिया तौर पर राजनीति मे हाथ-पैर मारकर अच्छे पदों पर आ सकते हैं, या जो वंचित हैं, शोषित हैं, जो राजनीति के द्वारा अपनी स्थिति सुधार सकते हैं। मैं इनमे से किसी भी वर्ग मे नहीं आ सकता। प्रसाद ने कहा तो था कि हमारा कोई विश्वास नहीं करेगा। लेकिन यह क्या ? पिताजी बीमार हैं, मैं अब भी, इतनी जबरदस्त ठोकर खाकर भी उसी तरह सोच रहा हू, जैसे पहले सोचता आया था। निरंजन घर जा रहे थे और ये सब बातें उनके मन मे कुलबुला रही थी। रास्ते के दोनो ओर हरे-भरे खेत थे। दूर तक हरियाली। झूमते धान। ऊपर उड़ते सफेद बगुलो के झुंड। दो-चार क्षण वे इधर-उधर देखते और फिर अपनी उधेड़ बुन मे खो जाते।

घर के पास पहुचे, तो वहां काफी भीड थी। जब कभी पिताजी बीमार पड़ते थे, लोग उनको देखने आ जाते थे। जमींदार न सही, साधन-संपत्ति वाले न सही, पर उस गाव मे वे आदरणीय थे। लोग उनको कुछ मानते थे। फिर गाव मे वह पुराना भाईचारा भी पूरी तरह न गया था, जिसके लिए कभी हमारा समाज प्रसिद्ध था। निरंजन चौंके, कहीं यह तार भी तो वैसे ही नही है ? वे जब घर के फाटक पर आये तो सब उनको ओर देखने लगे। रास्ता छोड़कर खडे हो गये।

पिता जी बीमार थे, अन्दर चारपाई पर लेटे थे। आखें अधखुली थी। लम्बी-लम्बी सासें ले रहे थे। जीवित थे। निरंजन को आया देख उन्होंने आखें खोली, चेहरा काप-सा गया। गला रुध गया। आंसू बह निकले। वे मूक हो लगातार निरंजन को देखने लगे।

उनको उस हालत मे देख, जो आस-पास खड़े थे वे हटकर बाहर चले गये। और निरंजन चारपाई के खूंटे पकड़कर, अपराधी की तरह, सिर नीचे किये बैठ गये। मा ने आकर फिर उनको दूध दिया। पिता जी..जो

तब तक दूध भी न ले रहे थे, दूध लेने के लिए हाथ बढ़ाया। उठने की कोशिश की। पर उठ न सके। मां ने उनके मुख में चमचे से दूध उड़ेल दिया। पिता जी बहुत कमजोर हो गये थे। माता जी की हालत भी अच्छी न थी। वह भी बहुत कमजोर थीं। पिताजी शायद बीमार न होते तो वह लड़की के शोक में और भी सूख जातीं।

"तो तुम आ गये ? मैं तुम्हारी ही इंतजार में था।"

निरंजन ने उनका हाथ सहलाया।

"मेरा जीवन असफल-सा रहा, मैंने तुमको वह सब बनाना चाहा, जो मैं स्वयं न बन सका। लेकिन···"

निरंजन ने किवाड़ की ओर देखा।

"तुम पढ़-लिख गये हो, लेकिन सुनता हूं, तुम उसी रास्ते पर जा रहे हो जिस पर मैं भटक गया था, और मुझसे पहले मेरे पिता जी भटक गये थे···"

"जी नहीं।"

"तो अच्छा है, संभल जाओ, समाज सेवा अच्छी है, पर परिवार सेवा आवश्यक है, कर्तव्य है। परिवार सुधरेगा, तो समाज सुधरेगा। यह मामूली बात है, समय लगता है। क्रान्ति आयेगी, तो भी समय लगेगा।"

"आप ज्यादह न बोलिये।"

"यह बताने के लिए ही तो मैंने इतने साल काट दिये, मैंने सोचा था कि तुम हमें देखकर जान जाओगे, और मुझे कहना ही न पड़ेगा। खैर···।"

"मैं जानता हूं मैं भी इसी निश्चय पर आ गया हूं, जिस पर आप भटककर कभी आये थे।"

"अच्छा है। मैंने सुना है कि तुमको नौकरी से निकाल दिया गया है। और वह भी तुम्हारे विचारों के लिए। कितनी बड़ी कीमत दे रहे हो इन विचारों के लिए···क्या करोगे ?"

"जी।"

"मैं ज्यादह दिन नहीं रहूंगा। अब-तब की बात है, मुझे तो तभी चला जाना चाहिये था जब तुम्हारी बहन गयी थी। अगर तुम तभी शादी कर लेते तो मुझे ये दिन न देखने पड़ते। अब तुम्हारे सिर पर दो प्राणियों

की मौत का पाप आ रहा है। शादी को इतनी महत्ता देना तुम्हारी नजर मे ठीक नहीं, पर हमारे समाज मे, सब इसी पर दारमदार है, मैंने भी तुम्हारी तरह कभी सोचा था, पर क्या पाया ?"

"हूं।"

"पीछे मुड कर देखता हूं तो सब गलतियां नजर आती हैं। कम से कम तुम तो हमारी गलतियो से सीखो।"

निरजन फूट पड़े। बिलख-बिलख कर रोने लगे और पिताजी चुप हो, आसू बहाते उनकी ओर देखते जाते थे। अभी उनकी जिन्दगी शुरू हुई थी, पर उनको अपना सारा जीवन एक गलती-सा लग रहा था। अभी ज्यादह अनुभव न हुए थे, घटनाए भी अधिक न घटी थी, पर सारा जीवन नितान्त अर्थहीन सा लग रहा था। नियति का रोस-सा लग रहा था। भारतीय समाज भी विचित्र है, इसमे यदि उच्च उदात्त धर्म है तो उच्च विचार है, चिन्तन है तो जडता भी है, मूर्खता भी। इतना बड़ा समाज है, इतना बड़ा देश है, कौन क्या करे, कैसे करे ? और पिताजी···"

"मैंने जो बात तब कही थी, अब भी कहता हूं, अब भी तुम्हारे एक बहन है, भाई है, उनकी जिम्मेवारी है, मैं नही सोचता कि मैं इनके लिए कुछ कर पाऊगा, पर तुम पर यह भार डालते हुए, मेरा मन बहा जाता है। शरीर है, जायेगा ही।"

'अब बोलिए न। सब ठीक हो जायेगा। आप ठीक हो जायेंगे।"

"मुझे तुम्हारी बहन के साथ चला जाना चाहिए था। वह मुझे बुला रही है।"

निरजन ने लम्बी सास ली। सन्देह हुआ, कहीं पिताजी ने अपने दुख मे, असफलता की निरन्तर पीडा के कारण, कुछ निगल तो नहीं लिया है।

शायद उनके पिता और बातें करते जाते, यदि उनकी मां निरजन को वहा से उठा कर न ले जाती। बिलख रही थीं। भाई भी घबराए आए, बहा रहे थे।

और निरजन व्याकुल, विह्वल हो, पिछवाडे मे, एक कमरे मे सिर पर हाथ रखे, रह-रह कर सिसकियां भर कर, रोते जाते थे। वे जान गए थे कि उनके पिताजी अब कुछ दिन के मेहमान थे।

॥ तीस ॥

पिताजी गुजर गये। और निरंजन पर वे सब जिम्मेवारियां आ पड़ीं, जो पारस्परिक रूप से हिन्दू परिवार के बड़े लड़के पर आ पड़ती हैं।

जैसा कि प्रसाद ने कहा था कि विश्वविद्यालय खुलेगा, तो वे भी उसके अध्यापक वर्ग में होंगे। निरंजन फिर विश्वविद्यालय में नियुक्त हो गये थे। लेकिन शास्त्री इस संसार में ही न रहे। वे अपने गांव फसल के दाम वसूलने गये, और उनके सिर पर उनका पुराना खपरैल का घर ही ढह गया। कहा गया कि श्रीधर ने ही, उनको घर में बन्द कर दिया था। किन्तु कोई सबूत न था।

निरंजन समाज में तो क्रान्ति ला न सके थे, पर उनमें क्रान्ति-सी आ गई थी। क्रान्ति समय की, व्यक्ति की, आपेक्षिकता के साथ आवश्यकता को समझना ही है। उन्होंने अपने आदर्शों से कई समझौते किये थे, जब-तब आदर्शों को वास्तविकता के स्तर पर लाने की चेष्टा की थी। समझौते हुए थे। परिणामतः समझौते उपयुक्त और युक्तियुक्त लगते थे, और आदर्श अस्वास्तविक।

वे अध्यापक थे, क्रान्ति का उत्साह उनके अतीत में था, अब वे उस क्रान्ति की कल्पना नहीं कर रहे थे, जिसके लिए अपने अदीर्घ अनुभव से, उन्होंने अपने को अयोग्य समझा था। पर एक और क्षेत्र में, जिसके लिए उनकी सारी शिक्षा-दीक्षा हुई थी, एक प्रकार की क्रान्ति-सी कर रहे थे। वे अंग्रेजी पढ़ाते थे, और अपनी भाषा में लिखते थे—साहित्य सृजन। उन सब अनुकरणात्मक प्रवृत्तियों को, जो शिक्षित व्यक्तियों में प्रचलित थीं, वे अपने साहित्य से नकार रहे थे। पश्चिम की अन्धाधुंध नकल को रोकने की कोशिश कर रहे थे। यदि साहित्य समाज की ओर उसकी महत्त्वाकांक्षाओं का दर्पण है, तो पश्चिमी समाजकी उच्छृंखलताओं, और विसंगतियों को, एक परम्परागत समाज में, परम्परागत साहित्य में प्रक्षिप्त करना आवश्यक था। यथार्थ के विपरीत था।

निरंजन पश्चिम में रह आये थे, और पाश्चात्य साहित्य पढ़ा था,

इसलिए उन लोगों से वे बेहतर स्थिति में थे, जो पश्चिम गये बगैर, उसको जाने बगैर, अपने समाज को समझे बगैर, पाश्चात्य मूल्यों को 'भारतीय' साहित्य पर कलम लगाने की कोशिश कर रहे थे। यह ऐसा कार्य था जो उनकी प्रारम्भिक आकांक्षाओं से भिन्न था। पर उतना वायवीय न था, अधिक ठोस था, इसलिए मानसिक दृष्टि से अधिक संतोषजनक।

पिता जी की जिम्मेवारियां सिर पर थीं, पर निरंजन उनके आदेश का पालन न कर सके। कुटुम्ब राव जी रह-रह कर अपना आदमी भेजते थे, पर निरंजन को उनका धन का प्रलोभन आकर्षित नहीं करता था। बल्कि उनको यह सोचने के लिए बाध्य कर रहा था जैसे वे कोई बिकाऊ टट्टू हों। वे शादी न कर पाये, न उनको ना ही कह पा रहे थे।

पार्वती से सम्बन्ध जो घनिष्ठता की ओर कभी बढ़ता जाता था, अब बहुत कुछ पतला गया था। पार्वती आती, मिलती, उसने विश्वविद्यालय में एम० ए० के लिए दाखिला भी लेना चाहा, लेकिन उसका प्रवेश न मिल सका। उससे बैर मोल लेना भी ठीक न था। इसके बावजूद श्रीधर की नजर उन पर थी। कभी-कभी धमकी देती हुई गुमनाम चिट्ठियां आ जातीं थी। एक बार उनके ही कमरे में वे चाकू भी लेकर आये थे। तब से निरंजन के दो विद्यार्थी उन्हीं के साथ, उन्हीं के कमरे में रहते थे।

निरंजन बुद्धिजीवी थे। बिना आवश्यक कार्य के, चिन्तन में ही, अपने को संतुष्ट कर लेते थे। वे प्रायः सोचते, "मैं कोई नायक नहीं हूं, न नेता ही, न सम्पन्न वर्ग का ही, न निम्न वर्ग का ही—एक प्रजातंत्र में कोई यह स्थायी रूप से होता भी नहीं है।"

सामाजिक कार्य के लिए विशेष चिन्तन ही नहीं, प्रकृति भी चाहिये, या तो रईस हो, प्रसाद की तरह, या दबंग, श्रीधर की तरह, या लचीला, शास्त्री की तरह। मैं इनमें से किसी के समान भी तो नहीं। जीवन-निर्वाह के लिए मैं किसी से कुछ मांग नहीं सकता, किसी की कदाचित् सहायता भी पा नहीं सकता। कृतज्ञता का बोझा उठा नहीं सकता। इस प्रकृति को लेकर मैं सामाजिक या राजनीतिक क्षेत्र में काम करूंगा भी तो कैसे करूंगा?

इतना कुछ हो रहा है, आदमी चांद तक पहुंच गया है। कितने ही युद्ध, कितने ही आविष्कार, कितनी ही उथल-पुथल, पर इस उपभोक्ता

सभ्यता में, मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन कदाचित घटनाशून्य हो गया है। वह वीक्षक मात्र रह गया है, समाज में, संसार में, उसके वावजूद घटनाएं हो रही हैं, हर जीवन करीव-करीव घटनाशून्य-सा हो रहा है। मेरा भी है।

गांधी जी का जमाना कुछ और था, उनकी देखा-देखी, कितने ही, छोटे-छोटे गांधी पैदा हो गये थे। मेरे पिता जी भी इसी जमात में आते थ। किन्तु स्वतंत्र भारत में उनकी क्या सत्ता है? वे देश के अन्तःकरण भी न वन सके।

यही हाल कम्यूनिस्टों का है। मैं खुद अपने अनुभव से जानता हूं। जैसा कि वह फिल्म निर्माता है, वैसे कितने ही हैं, जो आज पूंजीपति हैं, उद्योगपति हैं, और शोपक हैं। अच्छा यही है, अगर आरम्भिक उत्साह का यही अन्दाज है, तो राजनीति में, समाज सेवा में कूदा ही न जाय।

सेवा-वृत्ति वाले व्यक्ति में तादात्म्य की शक्ति होनी चाहिए। थोड़ी वहुत सब में होती है। क्या मुझ में है? अगर है भी, तो क्या निश्चित रूप से यह रहेगी? क्या कोई समय आयेगा जब मैं अपने अहं से, स्वार्थ से ऊपर उठ सकूंगा। मैं क्या इन 'वंचित', 'शोपित' लोगों के साथ रह सकूंगा? क्या वे मुझे अपनायेंगे? शायद नहीं।

भावुक व्यक्ति की प्रकृति होती है --अपने को सारे संसार में देखना, और सारे संसार में अपने को देखना, पर सम्पूर्ण विम्ब कभी भी किसी का नहीं पड़ता, फिर मैं वदल सकता हूं, वदना हूं, और सारा संसार वदलता है। कैसे कभी मैं इसके साथ उचित तालमेल विठा पाऊंगा? मैं अपने को देखूं, अपने को समझूं, यह पर्याप्त है, कोई ऐसा काम न करूं जिससे वार्गिक विपमता को वल मिले। यही काफी है।

मैं शायद भीरु हूं, भय और लौकिक वुद्धिमत्ता एक ही कोष्ठ में आते है। मैं कुछ करने से पहले ही, किनारे पर तो नहीं वैठ गया? विना तैरना जाने, मझधार में जाना दुस्साहस ही है। मैं किनारे पर ही सही, कोई बात नहीं, हर व्यक्ति की अपनी-अपनी शक्ति होती है, नियति होती है, कदाचित मेरी यही है।

घायल शेर ही आदमखोर होते हैं। मैं घायल हूं, लेकिन घायल किया नहीं गया हूं। मैंने समाज से पाया अधिक है, वजाय इसको देने के। जो

समाज के पैरों तले रौंदे जा रहे हैं, वे उठेंगे, कदम से कदम मिला कर चलेंगे। न मैं रौंदा जा रहा हूं, न रौंद रहा हूं, फिर क्यों चीखूं-चिल्लाऊं ?

क्रान्ति आयेगी, उस तरह की नहीं जिस तरह की मैंने कल्पना की थी, न उस तरह से ही, जिस तरह से कि हमने सोचा था। मगर समाज में आमूल परिवर्तन होंगे यह औद्योगिक सभ्यता जिस तरह और जिस तेजी से चल रही है, सम्प्रेषण के माध्यम और शिक्षा के क्षेत्र जिस तरह विस्तृत हो रहे हैं उससे यह अनुमान किया जा सकता है कि एक प्रकार की विकासशील क्रान्ति दूर नहीं है।

क्रान्ति होती है मनुष्य के अन्तर में, चेतना के कारण, और चेतना जगती है शिक्षा से, और मैं शिक्षा के क्षेत्र में हूं, बौद्धिक चेतना को प्रोत्साहित करता हूं और इस तरह अपना कर्त्तव्य, निज के प्रति, परिवार के प्रति, समाज के प्रति निभाने का प्रयत्न कर रहा हूं।" निरंजन अपने को इस तरह समझा कर, सन्तुष्ट करके, शांति पाते।

हर कोई अकेला है, पर हर कोई अकेला चल नहीं पाता है। भीड़ में कहीं पहुंचे या न पहुंचे, भीड़ का साथ तो रहता है। निरंजन उसी पथ पर थे, जिस पर महाजन भले ही न गये हों, पर जिस पर मानव समाज जा रहा था।